रिसर्च फाउंडेशन फॉर जैनोलॉजी, मद्रास

के

शिष्ट मण्डल द्वारा

भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों

तथा

शोध - संस्थानों की

शैक्षिक यात्रा

—एस0 कृष्णचन्द चोरड़िया

रिसर्च फाउण्डेशन फॉर जैनोलॉजी, मद्रास के शिष्ट-मण्डल द्वारा
भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों तथा शोध-संस्थानों की

शैक्षिक यात्रा

प्रस्तोता
एस० कृष्णचन्द चोरड़िया
[प्रधान सचिव]

प्रकाशक
रिसर्च फाउण्डेशन फॉर जैनोलॉजी,
सुगन हाऊस, 18 रामानुज अय्यर स्ट्रीट
मद्रास-600 079

रिसर्च फाउण्डेशन फॉर जैनोलॉजी मद्रास के प्रेरणा स्रोत, चेअरमैन; मद्रास के (मैट्रो) पुलिस कमिश्नर श्री एस० श्रीपाल (आई० पी० एस०) दिनांक २६ अगस्त १६८३ को आयोजित समारोह में मद्रास विश्वविद्यालय के तत्कालीन वाइस चांसलर डॉ० एम० सांतप्पा को एंडोवमेंट राशि (१५ लाख रुपया) भेंट करते हुए।

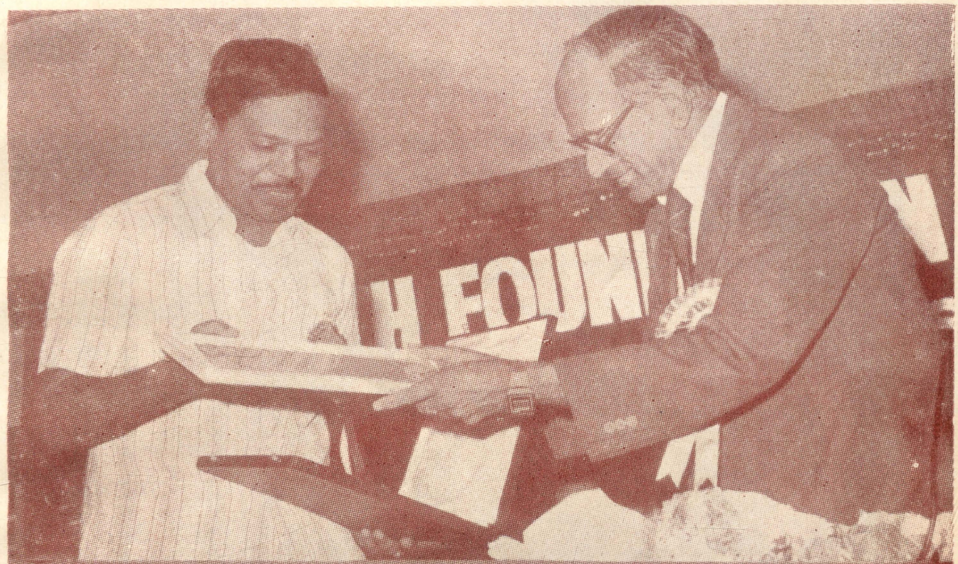

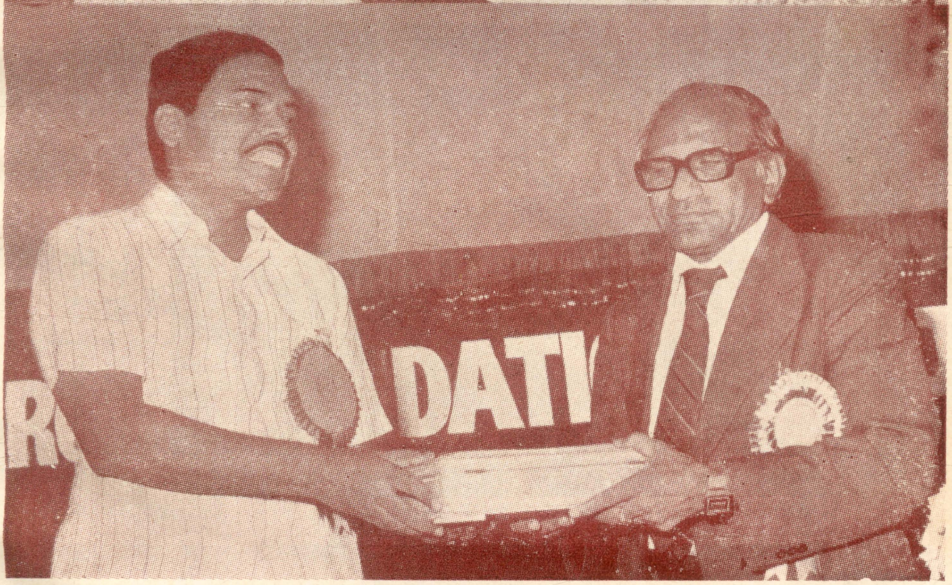

श्री एस० श्रीपाल (आई० पी० एस०), डॉ० एम० सांतप्पा द्वारा उपहृत मोमेन्टो ग्रहण करते हुए।

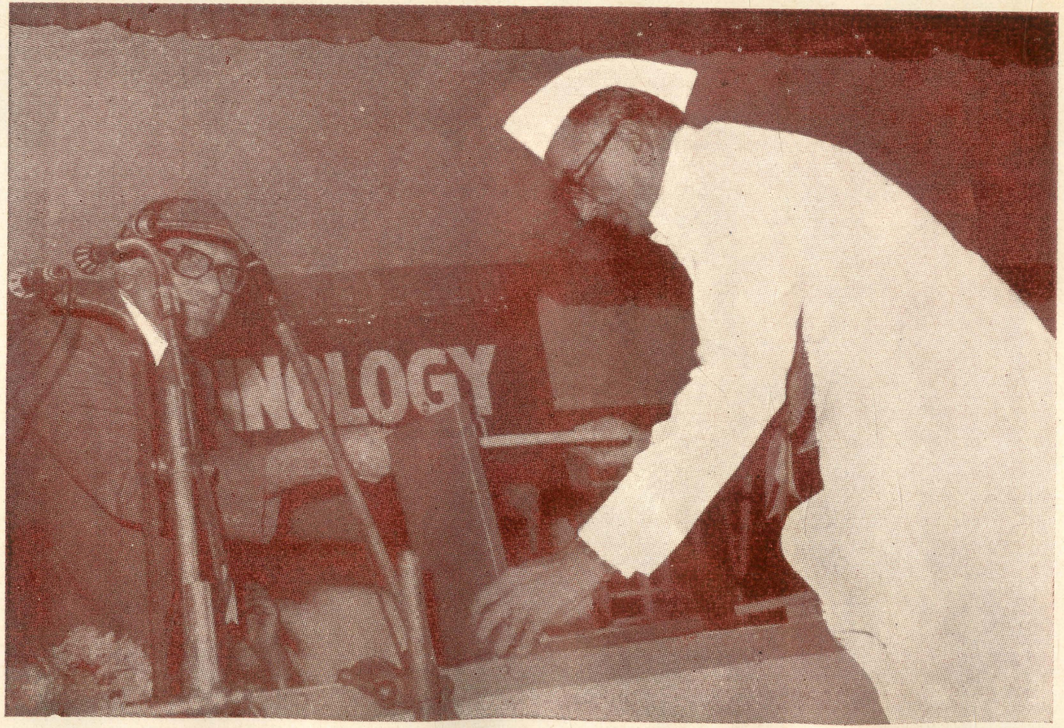

रिसर्च फाउण्डेशन फॉर जैनोलॉजी, मद्रास के तत्कालीन वॉइस प्रेसीडेण्ट तथा वर्तमान प्रेसीडेण्ट श्री सुरेन्द्रभाई एम० मेहता वाइस चांसलर डॉ० एम० सांतप्पा द्वारा उपहृत मोमेन्टो ग्रहण करते हुए।

दो

शब्द

समस्त जैन बन्धुओं की ओर से स्थापित जैन विद्या अनुसंधान प्रतिष्ठान, मद्रास द्वारा किये गये सत्प्रयत्न के परिणामस्वरूप मद्रास विश्व-विद्यालय में स्वतन्त्र जैन विद्या विभाग की स्थापना वास्तव में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण उपलब्धि है। प्रतिष्ठान अपने स्थापना-काल से ही दक्षिण भारत में जैन संस्कृति, दर्शन और वाङ्मय के व्यापक प्रसार की दिशा में सतत चिन्तनशील एवं प्रयत्नशील है, यह अत्यन्त हर्ष का विषय है।

मद्रास विश्वविद्यालय में नवस्थापित जैन विद्या विभाग जैन विद्या की विविध शाखाओं तथा अंगोपांगों के तुलनात्मक, समीक्षात्मक अध्ययन एवं अनुसंधान की दिशा में सुन्दरतम व्यवस्था कर सके, प्रगति कर सके, इस ओर अनुसंधान प्रतिष्ठान सहयोग करते रहने की भावना लिए कार्य-शील है, जो सर्वथा स्तुत्य है।

जैन विद्या भारतीय विद्या का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विभाग है। भारतीय संस्कृति, तत्त्वदर्शन, साहित्य, लोकभावना, लोकजागरण, लोक-जीवन, राष्ट्रीय ऐक्य आदि के सांगोपांग परिशीलन की दृष्टि से जैन विद्या के गहन अध्ययन, अनुशीलन की अपरिहार्य आवश्यकता है। जैन विद्या अनुसंधान प्रतिष्ठान, मद्रास इस आवश्यकता की पूर्ति में जिस उत्साह, लगन तथा रुचि पूर्वक प्रयत्नशील है, निश्चय ही, उसके उत्तम परिणाम प्रस्फुटित होंगे, ऐसा हमारा विश्वास है। प्रतिष्ठान के प्रधान सचिव श्री एस० कृष्णचन्द चोरड़िया निःसन्देह बधाई एवं प्रशंसा के पात्र हैं, जो रात-दिन इस कार्य के लिए तन-मन से जुटे हैं।

मद्रास जैन विद्या के अध्ययन, अनुशीलन एवं अनुसंधान के एक अन्तर्राष्ट्रीय वृहत् केन्द्र के रूप में सुप्रतिष्ठ हो सके, यह अनुसंधान प्रति-ष्ठान का एक स्वप्न है। आशा है, सभी कार्यकर्ताओं एवं सहयोगियों के समवेत प्रयत्न एवं लगन से यह अवश्य पूर्ण होगा। कार्य को विशेष गति देने, तदनुरूप व्यवस्थाएँ करने आदि की दृष्टि से जैन विद्या अनुसंधान प्रतिष्ठान, मद्रास की ओर से एक शिष्ट मण्डल द्वारा भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों, शोध संस्थानों एवं जैन विद्या केन्द्रों की शैक्षिक यात्रा का चिन्तन एवं निर्णय वास्तव में बहुत उपयोगी निर्णय था। हमें यह व्यक्त करते अत्यन्त प्रसन्नता होती है कि इसका क्रियान्वयन प्रतिष्ठान के

प्रधान सचिव श्री एस० कृष्णचन्द चोरड़िया के सत्प्रयत्न से बड़े सुन्दर रूप में परिसम्पन्न हुआ।

यह १७ दिनों की शैक्षिक यात्रा वास्तव में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण यात्रा थी, जिसके अन्तर्गत पश्चिम भारत, मध्य भारत, उत्तर भारत तथा पूर्व भारत में जैन विद्या के बहुमुखी अध्ययन, अनुसंधान के सन्दर्भ में जानने का, समझने का सुन्दर अवसर प्राप्त हुआ। भिन्न-भिन्न स्थानों के उच्चकोटि के विद्वानों के सम्पर्क में आने तथा उनके बहुमूल्य विचारों, सुझावों से लाभान्वित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, जिससे यहाँ के कार्य में सुन्दर दिशादर्शन प्राप्त होगा, ऐसी आशा है।

न यह अतिशयोक्ति तथा न कोई अतिरंजन ही है कि इस महत्वपूर्ण ऐतिहासिक यात्रा का मुख्य श्रेय प्रतिष्ठान के प्रधान सचिव श्री एस० कृष्णचन्द चोरड़िया को है, जिन्होंने मार्ग में अस्वस्थ हो जाने पर भी यात्रा को स्थगित करना स्वीकार नहीं किया। उन्हीं के उत्साह और आत्मबल का परिणाम था कि यात्रा गतिशील रही तथा अपने पूर्व निश्चित कार्यक्रम के अनुसार अत्यन्त सफल रूप में सम्पन्न हुई।

इस यात्रा के अन्तर्गत भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों, शोध संस्थानों एवं विद्यापीठों के विद्वानों ने जो सहृदयता, स्नेह एवं सहयोग का परिचय दिया, वह वास्तव में स्मरणीय है, स्तुत्य है।

प्रतिष्ठान के प्रधान सचिव द्वारा प्रस्तुत यह यात्रा विवरण प्रतिष्ठान के सभी सदस्यों, कार्यकर्ताओं, सहयोगियों तथा जैन विद्यानुरागी जनों के लिए निश्चय ही प्रेरक एवं उत्साहप्रद सिद्ध होगा, ऐसा हमारा विश्वास है।

<table>
<tr><td>डॉ. अमरचन्द
[एम. कॉम., पी-एच.डी.
अध्यक्ष—वाणिज्य विभाग
मद्रास विश्वविद्यालय,
मद्रास,
सदस्य—प्रबन्ध समिति
जैन विद्या अनुसंधान
प्रतिष्ठान, मद्रास]</td>
<td>डॉ. छगनलाल शास्त्री
[एम. ए. (त्रय), पी-एच.डी.
विद्यामहोदधि, भू० पू०
प्रवक्ता—रिसर्च इन्स्टीट्यूट
आफ प्राकृत, जैनोलॉजी
एण्ड अहिंसा, वैशाली,
बिहार विश्वविद्यालय
परामर्शक—जैन विद्या अनुसंधान प्रतिष्ठान, मद्रास]</td>
<td>डॉ. सी. बालसुब्रह्मण्यन्
[एम. ए., पी-एच. डी.
अध्यक्ष—तमिल विभाग
मद्रास विश्वविद्यालय,
मद्रास, परामर्शक—जैन
विद्या अनुसंधान प्रतिष्ठान,
मद्रास]</td></tr>
</table>

दिनांक २१. ६. ८५

शैक्षिक यात्रा

जैन संस्कृति का पावन स्रोत :

दक्षिण भारत प्राचीन काल से जैन संस्कृति, दर्शन तथा साहित्य का बड़ा उर्वर केन्द्र रहा है। जैन विद्या का यहाँ सर्वतोमुखी विकास हुआ। यहाँ के लोक-वाङ्मय में जैन आदर्शों का जो प्रतिष्ठापन हुआ, यहाँ की लोक-भाषाओं में जैन-मनीषियों, साधकों और लेखकों द्वारा जो साहित्य सर्जित हुआ, वह आज भी जैन संस्कृति और साहित्य की अमूल्य निधि के रूप में विद्यमान है।

चिन्तन : प्रेरणा : फल-निष्पत्ति :

तमिलनाडु जैन समाज में कुछ वर्षों से एक चिन्तन चल रहा था, यहाँ जैन विद्या के विकास के लिए समवेत रूप में कोई ठोस कार्य हो सके तो कितना अच्छा हो।

उसी चिन्तन की फल-निष्पत्ति मद्रास विश्वविद्यालय में नव स्थापित स्वतंत्र, सर्वांग-सम्पन्न जैन विद्या विभाग के रूप में आज हम देख रहे हैं। इस कार्य में समर्पित होने की पावन प्रेरणा जैन धर्म में अनन्य आस्थाशील मेरे पूज्य पिताजी परम श्रद्धास्पद **स्व० श्री एल० सुगनचन्दजी चोरड़िया** से मुझे मिली। यद्यपि वे एक व्यापारी व्यक्ति थे किन्तु जैन दर्शन की महानता, विश्वजनीनता एवं उपयोगिता का भाव उनकी रग-रग में भरा था। वे चाहते थे, यहाँ जैन विद्या के व्यापक अध्ययन, अनुशीलन एवं अनुसंधान की व्यवस्था हो सके तो कितना उत्तम हो। उन्होंने मुझे इस ओर प्रेरित किया, मैं इसे अपने जीवन का एक महत्त्वपूर्ण कार्य समझूँ, इस दिशा में प्रयत्नशील रहूँ। जैन तत्त्व-ज्ञान में मेरी रुचि प्रारम्भ से ही रही है। अपने पूज्य पिताजी द्वारा प्रदत्त प्रेरणा को मैंने हृदय से स्वीकार किया और मैं यथाशक्ति इस कार्य में लगा। मैंने इसे समय की एक महत्त्वपूर्ण मांग के रूप में स्वीकार किया। क्रमशः वातावरण बना। समाज के वरिष्ठ जनों का आशीर्वाद मिला। साथियों का स्नेहपूर्ण सहयोग मिला। पुण्यचेता पद्मश्री स्व० सेठ मोहनमलजी

सा० चोरड़िया, भारतीय संस्कृति तथा जैन विद्या के अनन्य अनुरागी, प्रबुद्ध चिन्तक मद्रास के आरक्षि-आयुक्त (पुलिस कमिश्नर) श्रीयुत श्रीपालजी जैसे उदारचेता पुरुषों का नेतृत्व मिला। रिसर्च फाउण्डेशन फॉर जैनोलॉजी नामक संस्थान का उद्भव हुआ। मद्रास विश्वविद्यालय में सर्वांग-सम्पन्न जैन विद्या विभाग की स्थापना हो, इस दिशा में संस्थान समुद्यत हुआ। जहाँ संकल्प होता है, वहाँ सिद्धि अवश्य होती ही है।

जैन विद्या विभाग की स्थापना :

मद्रास विश्वविद्यालय के १२५वें स्थापना-समारोह के पुण्य अवसर पर दिनांक २०-६-८३ को, जिसका उद्घाटन भारत के राष्ट्रपति महामहिम ज्ञानी जैलसिंह ने किया, जैन विद्या विभाग का शुभोद्घाटन तमिलनाडु के मुख्यमंत्री माननीय श्री एम० जी० रामचन्द्रन् द्वारा परि-सम्पन्न हुआ। सभी कार्यकर्ताओं को अपरिसीम हर्ष था कि जिस लक्ष्य के लिए वे कार्यरत थे, उसकी पहली मंजिल सफल हुई।

विद्वत्सहयोग :

विभाग की स्थापना हुई, बहुत शुभ हुआ। किंतु विभाग सुंदरतम रूप में चले, इस हेतु हम सब कार्यकर्ताओं का सतत प्रयत्नशील रहना, उद्यमशील रहना, मैं आवश्यक मानता हूँ। इस दिशा में मेरी यथाशक्ति कार्यशीलता है।

मुझे प्रकट करते अत्यधिक प्रसन्नता होती है कि मेरे प्रातःस्मरणीय गुरुदेव, भारतीय वाङ्मय तथा जैन दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान्, प्रबुद्ध मनीषी, बहुश्रुत पं० र० युवाचार्य, सौम्यचेता स्व० श्री मिश्रीमलजी म० 'मधुकर' के अनुग्रह व प्रेरणा से मुझे इस कार्य में संस्कृत, प्राकृत, पालि, अपभ्रंश आदि प्राच्य भाषाओं तथा भारतीय वाङ्मय एवं जैन विद्या के राष्ट्रविश्रुत मनीषी डॉ० छगनलाल शास्त्री एम० ए० (त्रय), पी-एच० डी० का सहयोग प्राप्त हुआ।

रिसर्च फाउण्डेशन फॉर जैनोलॉजी के सन्दर्भ में शैक्षिक दृष्टि से जो करणीय था, उस हेतु डॉ० शास्त्रीजी सन् १९८३ में मद्रास आए। लगभग एक महीना रहे। इस कार्य के प्रसंग में उन्होंने भारतवर्ष के विभिन्न विश्वविद्यालयों, प्राच्य विद्या-केन्द्रों, जैन शोध संस्थानों के प्रमुख विद्वानों से पत्र-व्यवहार द्वारा सम्पर्क साधा। इधर के कार्यों से उन्हें अवगत कराया। कार्य के विकास तथा उन्नयन की दिशा में उनके बहुमूल्य सुझाव प्राप्त किये, जो हमारे लिये मार्गदर्शक रहेंगे।

एक बहुमूल्य सुझाव :

डॉ० शास्त्रीजी अत्यन्त उच्चकोटि के विद्वान् तो हैं ही, साथ ही साथ वे बहुत ही व्यावहारिक एवं कार्यकुशल हैं। संस्थाओं के संचालन का उन्हें बहुत बड़ा अनुभव है। भारतवर्ष के अनेक विश्वविद्यालयों एवं शोध-संस्थानों में अध्ययन, अध्यापन तथा अनुसंधान में संलग्न विद्वानों से उनका घनिष्ठ सम्पर्क है। उन्होंने मेरे समक्ष एक सुझाव रखा कि भारत के विभिन्न प्राच्य विद्या-केन्द्रों एवं शोध-संस्थानों में जैन विद्या के संदर्भ में जो कार्य चल रहा है, उसे आपको तथा आपके यहाँ के साथियों को साक्षात् देखना चाहिए। उन केन्द्रों के साथ सम्पर्क जोड़ना चाहिए। वहाँ कार्यरत विद्वानों से परिचय करना चाहिए। डॉ० शास्त्रीजी का मैं अपने पर बड़ा स्नेहानुग्रह मानता हूँ, उन्होंने विशेष रूप से यह कहा कि देश के विभिन्न विद्या-केन्द्रों एवं विद्वानों के साथ उनका जो घनिष्ठ आत्मीयता-पूर्ण सम्बन्ध है, उससे हमें लाभान्वित होना चाहिए। उन विद्वानों के साथ सीधे सम्पर्क में आना चाहिए ताकि भविष्य में जब भी आवश्यक हो, यहाँ के कार्य में उनका मार्गदर्शन, उनके सुझाव, उनका सहयोग प्राप्त किया जा सके। डॉ० शास्त्रीजी का सुझाव मुझे बहुत प्रिय लगा, क्योंकि जैनोलॉजी के विकास का जो कार्य हमारे सामने है, उसकी परिपूर्ति विद्वज्जगत् के व्यापक सम्पर्क के बिना हो नहीं सकती। मैंने अपने जिन-जिन निकटतम साथियों के समक्ष चर्चा की, वे इससे सहमत हुए तथा इसे उपयोगी माना।

शैक्षिक यात्रा का निर्णय :

दिनांक ३० मार्च १९८४ को रिसर्च फाउण्डेशन फॉर जैनोलॉजी मद्रास जनरल बॉडी की मीटिंग थी। अन्यान्य विषयों के साथ-साथ मैंने भारत के विद्या-केन्द्रों की यात्रा के सम्बन्ध में परिकल्पित योजना उपस्थित सदस्य महानुभावों के समक्ष रखी। जनरल बॉडी ने सर्वसम्मति से उसे स्वीकृत किया।

डॉ० शास्त्रीजी का पुनः मद्रास आगमन हुआ। अपने एकमासीय प्रवास में उन्होंने जैनोलॉजी के बहुमुखी पाठ्यक्रम के संदर्भ में चिन्तन-मनन किया। उस विषय में देश के प्रमुख विद्वानों से सम्पर्क साधा। विभिन्न विश्वविद्यालयों में गतिशील पाठ्यक्रमों की जानकारी प्राप्त की तथा यहाँ के लिए पाठ्यक्रमों की एक प्रारूपात्मक परिकल्पना की। इस बार डॉ० शास्त्रीजी की विशेष प्रेरणा रही कि हम लोग उपर्युक्त उद्देश्य

से अब शैक्षणिक यात्रा अवश्य करें। अनेक कार्यों में व्यस्त होते हुए भी मैंने मन में निश्चय किया कि अब यह यात्रा शीघ्र ही हमें करनी चाहिए।

उत्साहपूर्ण भावना :

मैं बीच-बीच में अपने साथियों से चर्चाएँ करता रहा। मुझे उनसे इस दिशा में उत्साह प्राप्त होता रहा। इसी वर्ष जुलाई मास में हमारे सौभाग्य से डॉ. शास्त्रीजी का पुनः आगमन हुआ। अपने आगमन से पूर्व वे राजस्थान से हमें प्रेरणा देते रहे थे कि अब हमें इस यात्रा में विलम्ब नहीं करना चाहिए। डॉ. शास्त्रीजी के मद्रास आने से पूर्व ही हम लोग इस यात्रा के सन्दर्भ में मानसिक दृष्ट्या तैयार थे। इसी सत्र से जैन विद्या विभाग के प्रारम्भ किये जाने का चिन्तन था। अतः हमने अति शीघ्र यात्रा करना आवश्यक माना, जिससे हम जैन विद्या के लब्ध-प्रतिष्ठ विद्वानों का सद्यः अपेक्षित कार्य में पथ-दर्शन प्राप्त कर सकें।

सहमति : समर्थन : शुभ कामना :

दिनांक १६ जुलाई ८४ को रिसर्च फाउण्डेशन के चेयरमैन, मद्रास के आरक्षि-आयुक्त श्रीयुत श्रीपालजी की अध्यक्षता में आरक्षि-आयुक्त सभा-भवन में रिसर्च फाउण्डेशन फॉर जैनोलॉजी की प्रबन्ध समिति की मीटिंग हुई, जिसका मुख्य उद्देश्य प्रस्तावित यात्रा पर चिन्तन करना था। इस मीटिंग में श्रीयुत डॉ. छगनलालजी शास्त्री भी उपस्थित थे। उन्होंने अपने संक्षिप्त भाषण में यात्रा की आवश्यकता तथा उपयोगिता पर प्रकाश डाला। उपस्थित सभी सदस्य इससे सहमत थे। अध्यक्ष महोदय ने अपने भाषण में इस यात्रा को अत्यन्त उपयोगी एवं आवश्यक बताते हुए कहा कि हमें इससे अपने कार्य में विशेष प्रेरणा प्राप्त होगी। अध्यक्ष महोदय एवं अन्य सभी सदस्यों ने इस सम्बन्ध में अपनी शुभ कामनाएँ प्रकट कीं।

यात्रा में मैं, विद्वद्वर डॉ. छगनलालजी शास्त्री, रिसर्च फाउन्डेशन फॉर जैनोलॉजी के मानद परामर्शदाता एवम् मद्रास विश्वविद्यालय के तमिल विभाग के अध्यक्ष, हमारे अनन्य सहयोगी डॉ. सी. बालसुब्रह्मण्यन् जी, मद्रास विश्वविद्यालय के वाणिज्य विभाग के अध्यक्ष डॉ. अमरचन्द जी, रिसर्च फाउण्डेशन फॉर जैनोलॉजी के सचिव श्री कांतिलालजी संघवी तथा डॉ. शास्त्रीजी के सहयोगी फोटोग्राफर श्री बुधमलजी शर्मा का जाना निश्चित हुआ।

दिनांक १६ जुलाई १६८४ को यहाँ से प्रस्थान करने का निश्चय किया गया।

यात्रा का शुभारम्भ :

मुझे बड़ी प्रसन्नता थी कि बहुत समय से मेरे मन में जो कल्पना थी, वह सफल होने की दिशा में अग्रसर थी। श्री कांतिलालजी संघवी अनिवार्य कारणवश दिनांक १६ जुलाई १६८४ को हमारे साथ प्रस्थान नहीं कर सके। उन्होंने निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार वाराणसी पहुँचने का विचार व्यक्त किया। यात्रा के कार्यक्रम की रूपरेखा हम पहले ही तैयार कर चुके थे, जिसे सम्बद्ध विद्वानों के पास, जिनसे सम्पर्क साधना था, भेज चुके थे। दिनांक १६ जुलाई १६८४ को मद्रास से नवजीवन एक्सप्रेस द्वारा प्रस्थान कर मैं, डॉ. शास्त्रीजी तथा शर्माजी सीधे २० जुलाई १६८४ को अहमदाबाद पहुँचे। डॉ. सी. बालसुब्रह्मण्यन्‌जी तथा डॉ. अमरचन्दजी का मद्रास विश्वविद्यालय में दि. १६-७-८४ को अनिवार्य कार्यक्रम था। उसे सम्पन्न कर वे सीधे हम से कुछ पहले हवाई यात्रा द्वारा अहमदाबाद पहुँच गए।

गुजरात के विद्वानों के बीच :

दिनांक २१ जुलाई १६८४ को प्रातः गुजरात के प्रमुख जैन विद्वानों से भेंट करने हेतु हम लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर गये। भारतीय विद्या के अध्ययन, अनुसंधान की दृष्टि से यह एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसकी स्थापना जैन समाज के यशस्वी लोकसेवी श्री कस्तूरभाई ने अपने पूज्य पिता श्री लालभाई तथा पूजनीय पितामह श्री दलपतभाई की पुण्य स्मृति में की। श्री कस्तूरभाई बहुत ही सूझ-बूझ के धनी थे। वे जानते थे, कोई भी संस्थान तभी सफलतापूर्वक कार्य कर सकता है, जब उसका कार्य-निर्वहण अत्यन्त सुयोग्य, निष्ठाशील एवं कर्तव्यनिष्ठ पुरुष द्वारा हो। उन्होंने संस्थान के निदेशक पद पर देश के महान विद्वान श्री दलसुखभाई मालवणिया को प्रस्थापित करना चाहा। उन दिनों श्री दलसुखभाई हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी के अन्तर्गत प्राच्य महाविद्यालय में जैन दर्शन के प्राध्यापक थे। पुण्यश्लोक श्रद्धेय पं० सुखलालजी संघवी के सेवानिवृत्त होने के पश्चात् उनके अन्यतम अन्तेवासी श्री दलसुखभाई उस पीठ पर आये। अपने महान् गुरु की गौरवपूर्ण परम्परा को बहुत ही सुन्दर रूप में उन्होंने वहाँ निभाया, निभा रहे थे। विश्वविद्यालय में बहुत लोकप्रिय थे। अभी उनका सेवाकाल बाकी था, किन्तु स्व० श्री

कस्तूरभाई ने उनसे अत्यधिक आग्रह किया कि वे अब गुजरात को अपना कार्यक्षेत्र बनायें एवं उन द्वारा नवस्थापित विद्यापीठ का कार्य सम्भालें। हिन्दू विश्वविद्यालय में भी दलसुखभाई के लिए बड़ी चाह थी, वे वहाँ का कार्यकाल समाप्त करके ही जाएँ। किन्तु सेठ श्री कस्तूरभाई का इतना स्नेहपूर्ण, भावनापूर्ण आग्रह था कि उसे टाला नहीं जा सका और श्री दलसुखभाई वहाँ से निवृत्त होकर अहमदाबाद आ गये। तब से यह संस्थान भारतीय विद्या के क्षेत्र में बहुत महत्वपूर्ण कार्य करता आ रहा है। इसका अपना एक वृहत् पुस्तकालय है। अनेक ग्रंथों के समीक्षात्मक, शोधपूर्ण संस्करण यहाँ से प्रकाशित हुए हैं। यह गुजरात विश्वविद्यालय द्वारा कतिपय विषयों में पी-एच. डी. के लिए स्वीकृत संस्थान है। अनेक शोधार्थियों ने यहाँ कार्य कर पी-एच. डी. प्राप्त की है।

अहमदाबाद के विद्वानों को पहले से ही हमने अपने कार्यक्रम से अवगत करा दिया था। एल. डी. इन्स्टीट्यूट में जैनदर्शन तथा प्राकृत आदि के अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त विद्वान, एल. डी. इन्स्टीट्यूट के भूतपूर्व निदेशक पं. श्री दलसुखभाई मालवणिया, गुजरात विश्वविद्यालय के भाषा विभाग के अन्तर्गत पालि, प्राकृत के प्राध्यापक डॉ. के. आर. चन्द्रा एम. ए., पी-एच. डी. आदि से हमारी भेंट हुई।

हम लोगों की ओर से श्रीयुत डॉ. छगनलालजी शास्त्री ने मद्रास विश्वविद्यालय में नव स्थापित जैन विद्या विभाग के सम्बन्ध में जानकारी दी तथा अपनी इस यात्रा का उद्देश्य बतलाते हुए कहा कि यह विभाग जैन विद्या के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य कर सके, इस हेतु आप जैसे विद्वानों से मार्गदर्शन लेने का अभिप्रेत लिए हम यात्रा पर निकले हैं।

मालवणियाजी के उद्गार :

श्री मालवणियाजी ने कहा—'मद्रास विश्वविद्यालय में स्वतन्त्र जैन विद्या विभाग की स्थापना वास्तव में महत्त्वपूर्ण कार्य है, अभिनन्दनीय है। जैन समाज ने इसके लिए प्रयत्न किया, श्री चोरड़ियाजी आदि युवा कार्यकर्ताओं ने इसे आगे बढ़ाया, यह बहुत हर्ष का विषय है। हम लोगों से आप क्या सहयोग चाहते हैं?'

मैंने उनकी सेवा में निवेदन किया—'विश्वविद्यालय में, रिसर्च फाउण्डेशन में जिनसे हम मार्गदर्शन पा सकें, जिनके अध्ययन तथा अनुभव से हम लाभान्वित हो सकें, कृपया ऐसे विद्वान हमें बतायें। विभाग स्थापित हो जाने के बाद अब विद्वानों के ही करने का मुख्य कार्य है।'

अहमदाबाद में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त विद्वान् पं० दलसुखभाई मालवणिया आदि एल० डी० इन्स्टीट्यूट के विद्वानों के साथ

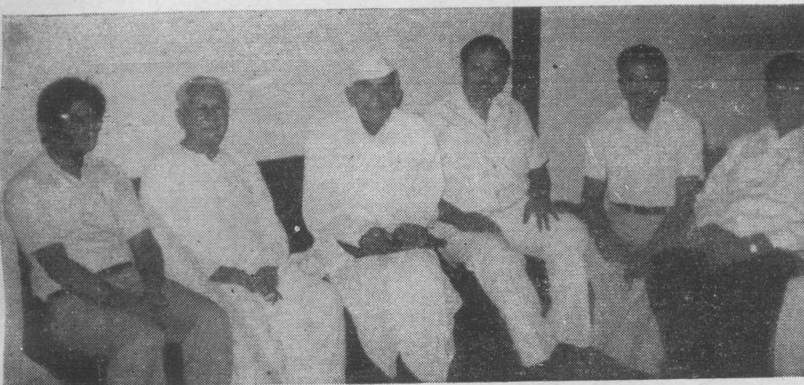

बांये से दूसरे पं० दलसुखभाई मालवणिया, तीसरे—डॉ० छगनलाल शास्त्री, चौथे—श्री एस० कृष्णचन्द चोरड़िया, छठे—डॉ० सी० बालसुब्रह्मण्यन्।

सन्दर्भ देखें पृष्ठ ९ पर

अहमदाबाद में प्राकृत-वाङ्मय, कथा साहित्य एवं भाषाविज्ञान आदि के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् तथा डॉ० एच० सी० भायाणी के साथ प्राकृत एवं जैन वाङ्मय पर विचार-विमर्श करते हुए

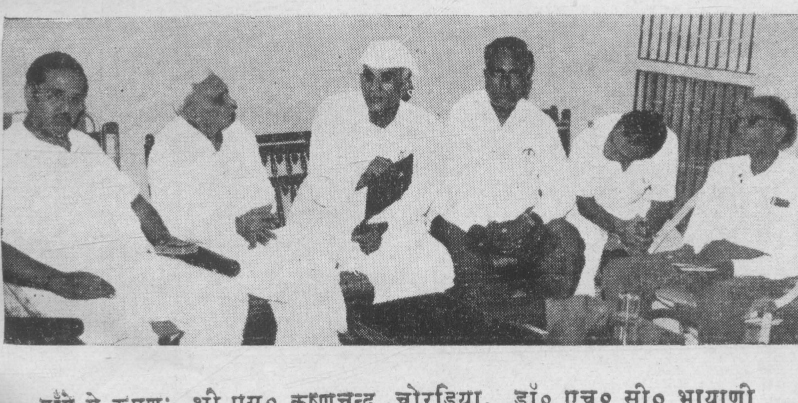

बाँये से क्रमशः श्री एस० कृष्णचन्द चोरड़िया, डॉ० एच० सी० भायाणी डॉ० छगनलाल शास्त्री, डॉ० सी० बालसुब्रह्मण्यन्, डॉ० अमरचन्द तथा डॉ० के० आर० चन्द्रा।

सन्दर्भ देखें पृष्ठ १६ पर

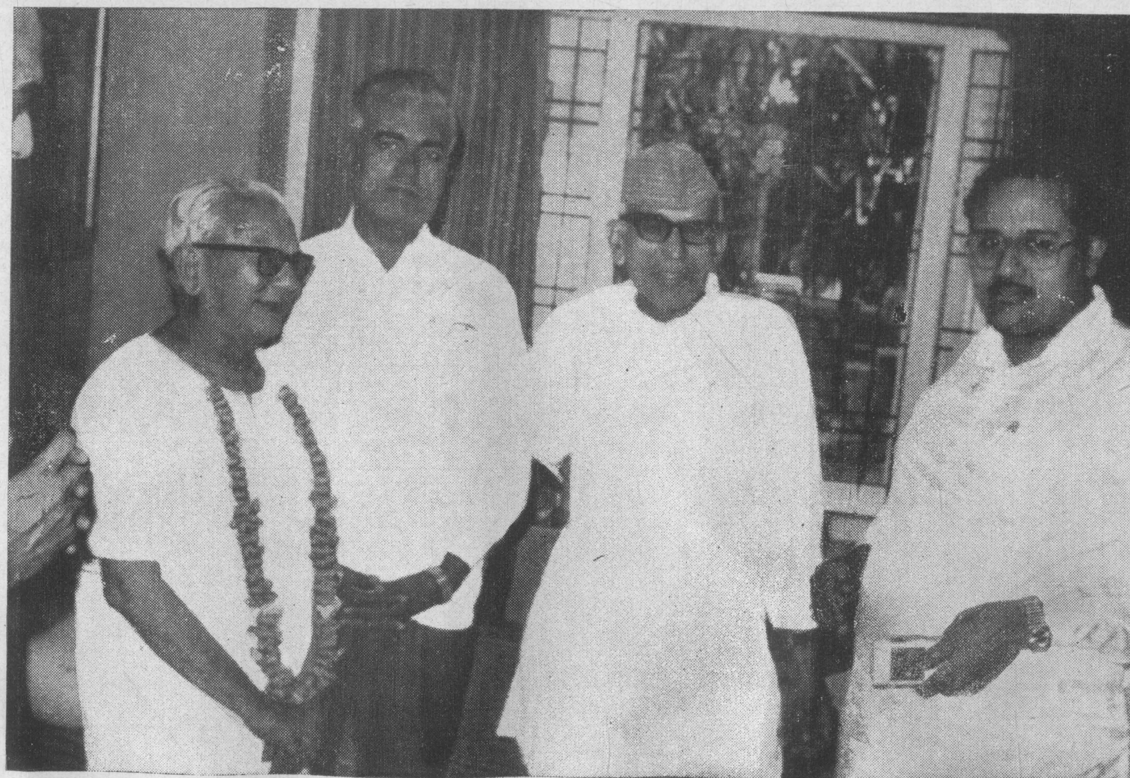

अहमदाबाद में श्रीमान् पं० दलसुखभाई मालवणिया के ७५वें जन्म-दिवस के उपलक्ष्य में उनका अभिनन्दन करते हुए
दाहिनी ओर से प्रथम—श्री एस० कृष्णचन्द चोरड़िया, दूसरे डॉ० छगनलाल शास्त्री,
तीसरे—डॉ० सी० बालसुब्रह्मण्यन्, सामने पं० दलसुखभाई मालवणिया। सन्दर्भ पृष्ठ २३ पर देखें

श्री मालवणियाजी ने कहा—'बहुत दु:ख की बात है, आज इस क्षेत्र में उच्चकोटि के विद्वान बहुत कम उपलब्ध हैं। जो थोड़े से बचे हैं, वे विभिन्न स्थानों में कार्यरत हैं। विद्वानों की पीढ़ी समाप्त होती जा रही है। नये विद्वान तैयार नहीं हो रहे हैं। समाज इस दिशा में प्रयत्नशील भी नहीं है। यदि ऐसा ही रहा तो कुछ समय बाद विद्वान मिलने ही बन्द हो जायेंगे।'

मैंने उनसे निवेदन किया—'जैसा आप फरमाते हैं, सही है। विद्या के क्षेत्र में जैन समाज की वैसी अभिरुचि नहीं है, जैसी होनी चाहिए। जैन समाज का सार्वजनिक रूप में धन खर्च न होता हो, ऐसी बात नहीं है, किन्तु समाज के लोग विद्या को, तत्त्व-ज्ञान को अधिक महत्त्व नहीं देते। वे उसे गौण मानते हैं। मैं समझता हूँ, वह इसलिए है कि समाज में तत्त्व-ज्ञान का, विद्या का प्रसार नहीं के बराबर है। जैन समाज अधिकांशतः व्यापारी समाज है। अतः उसका दृष्टिकोण अर्थ-प्रधान हो गया है।'

विभाग की प्रारम्भिक व्यवस्था की दृष्टि से हमें क्या-क्या करना चाहिए, इस पर जिज्ञासा करने पर श्री मालवणियाजी ने कहा—'सब से पहले यह आवश्यक है कि एक अच्छे, उपयोगी पुस्तकालय की स्थापना की जाए। क्योंकि विभाग के कार्यरत होते ही शोधार्थियों को जैन दर्शन तथा अन्य दर्शनों के ग्रंथों की आवश्यकता पड़ेगी। इस तरफ आप लोग विशेष ध्यान दें।'

मैंने उनसे निवेदन किया—'हम पुस्तकालय स्थापित करवायेंगे ही, इस सम्बन्ध में हमने एक कार्य और किया है। दक्षिण भारत में दिगम्बर जैनों के कई प्राचीन समृद्ध मठ हैं। वहाँ ग्रंथों का भी बहुत अच्छा संग्रह है, प्राचीन भी अर्वाचीन भी। मैंने मूडबिद्री के भारत-विख्यात जैन मठ के पूज्य भट्टारक श्री चारुकीर्तिजी महाराज से तथा होम्बुजा जिला—सिमोगा (कर्नाटक) के भट्टारक श्री देवेन्द्रकीर्तिजी महाराज से सम्पर्क किया। उन्हें मद्रास विश्वविद्यालय में जैन विद्या विभाग की स्थापना से अत्यधिक प्रसन्नता है। दोनों ही भट्टारक महोदयों ने अपने यहाँ के ग्रंथ-संग्रह विभाग में उपयोग में आयें, कृपा कर ऐसी स्वीकृति प्रदान की। इसी प्रकार श्रवणबेलगोला मठ के भट्टारक महोदय से भी हमें स्वीकृति प्राप्त हुई है।

श्री दलसुखभाई तथा डॉ. चन्द्रा ने पूछा—'क्या वे अपना संग्रहालय विभाग के पुस्तकालय को भेंट रूप में प्रदान कर देंगे ?'

मैंने उनसे कहा—'अभी उनके यहां के ग्रंथों का उपयोग लेने की बातचीत हुई है, प्रदान करने की नहीं। उनके यहाँ प्राचीन काल की अनेक ताड़पत्रीय, भोजपत्रीय महत्त्वपूर्ण पाण्डुलिपियाँ हैं। उन्होंने यह सहर्ष स्वीकार किया कि वे अपने यहाँ के ग्रंथ उपयोगार्थ मद्रास भेज सकेंगे, उन्हें सुरक्षित रखते हुए उपयोग में लेने के अनन्तर यथावत् रूप में वापस लौटा दिया जाय।'

दलसुखभाई—'यह बहुत अच्छी बात है। जो शोधार्थी किन्हीं प्राचीन ग्रंथों पर शोध करना चाहेंगे, उन्हें इससे अनुकूलता प्राप्त होगी। दक्षिण में तमिल भाषा तथा कन्नड़ भाषा में विपुल मात्रा में जैन साहित्य रचा गया। उसकी खोज होनी चाहिए, उसके विवरण प्रस्तुत किये जाने चाहिए, उस पर शोध कार्य किया जाना चाहिए।'

'प्राचीन पाण्डुलिपियों के शोधार्थ उपलब्ध होने की यह बहुत अच्छी बात है, किन्तु अध्ययन करने वालों के लिए, अनुसंधान करने वालों के लिए उस नूतन साहित्य की भी सतत आवश्यकता रहती है, जो तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक दृष्टि से सर्जित हुआ है। इसलिए वैसा साहित्य अंग्रेजी, जर्मन, हिन्दी, गुजराती, राजस्थानी, कन्नड़, तमिल आदि जिन-जिन भाषाओं में प्रकाशित हुआ हो, संगृहीत किया जाना चाहिए। साथ ही साथ संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश में रचित जैन विद्या के वे मौलिक ग्रंथ, जो प्रकाशित हो चुके हैं, अवश्य ही संगृहीत करने चाहिए। प्रारम्भ में कम से कम एक लाख की राशि पुस्तकालय पर व्यय करना अपेक्षित होगा। किसी भी अध्ययन-केन्द्र का पुस्तकालय सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भाग है। कदम-कदम पर अनुसंधानार्थियों को ग्रंथों का अवलोकन करना होता है।'

मैंने उनके सुझाव का स्वागत करते हुए कहा—'आपके विचार बहुत ही सुन्दर हैं। हम अपने कार्यकर्ताओं के समक्ष इन्हें रखेंगे। इस दिशा में प्रयत्न करेंगे।'

'मेरा आपसे एक विनम्र अनुरोध है कि आप जैसे उच्चतम वरिष्ठ विद्वानों का समय-समय पर हमें मद्रास में मार्गदर्शन प्राप्त होता रहे तो हमारे कार्य में विशेष गति आ सकती है। आपके ज्ञान तथा अनुभव से विभागीय विद्वान, अध्ययनार्थी तथा हम लोग लाभान्वित हो सकते हैं।'

अहमदाबाद में पं० दलसुखभाई मालवणिया का अभिनन्दन करते हुए श्री एस० कृष्णचन्द चोरड़िया, साथ में डॉ० सी० बालसुब्रह्मण्यन् तथा डॉ० छगनलाल शास्त्री।

सन्दर्भ पृष्ठ २४ पर

जैन विद्या अनुसन्धान प्रतिष्ठान, मद्रास तथा मद्रास विश्वविद्यालय में नव स्थापित जैन विद्या विभाग के सन्दर्भ में अध्ययन-अनुसन्धान सम्बन्धी योजनाओं पर एल० डी० इन्स्टीट्यूट, अहमदाबाद परिसर में चिन्तनरत—बायें से पहले डॉ० छगनलाल शास्त्री, दूसरे प० दलसुखभाई मालवणिया तथा तीसरे डॉ० के० आर० चन्द्रा। सन्दर्भ पृष्ठ १२ पर

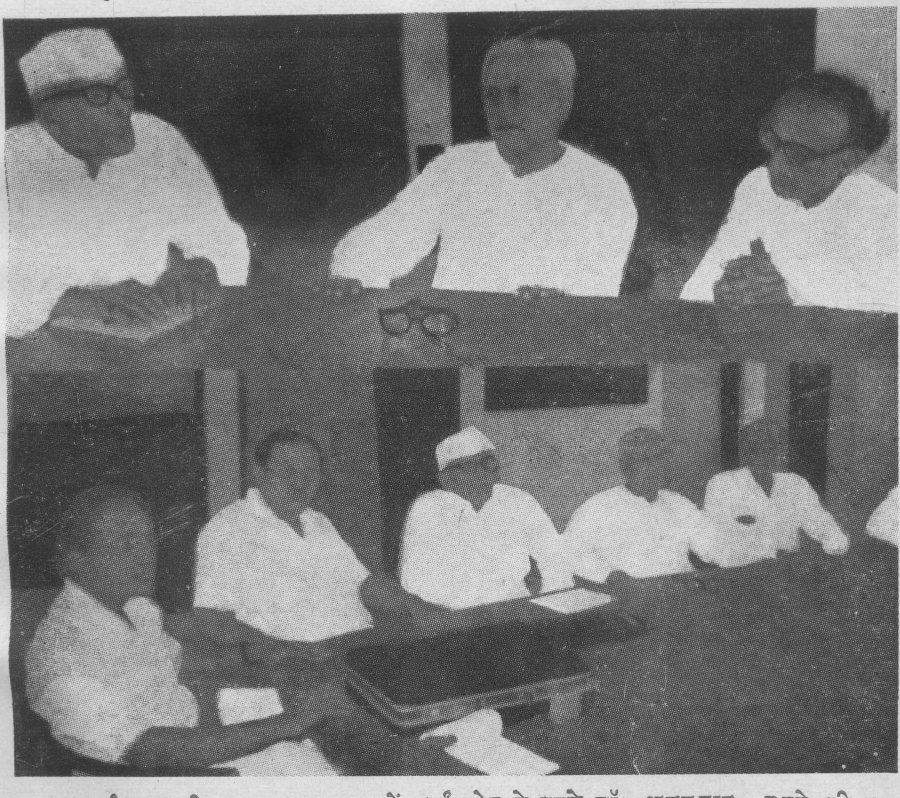

एल० डी० इन्स्टीट्यूट, अहमदाबाद में बाईं ओर से पहले डॉ० अमरचन्द, दूसरे श्री एस० कृष्णचन्द चोरडिया, तीसरे डॉ० छगनलाल शास्त्री, चौथे पं० दलसुखभाई मालवणिया तथा पाँचवे प्रो० के० आर० चन्द्रा। सन्दर्भ पृष्ठ १२ पर

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के जैन दर्शन विभागाध्यक्ष डॉ० फूलचन्द्र जैन के साथ जैन विद्या के अध्ययन, अनुसंधान तथा बहुमुखी विकास पर विचार विमर्श करते हुए। बाईं ओर से पहले डॉ० छगनलाल शास्त्री, दूसरे डॉ० फूलचन्द्र जैन तथा तीसरे श्री एस० कृष्णचन्द चोरड़िया ! (प्रसंग देखें पृष्ठ ३३ पर)

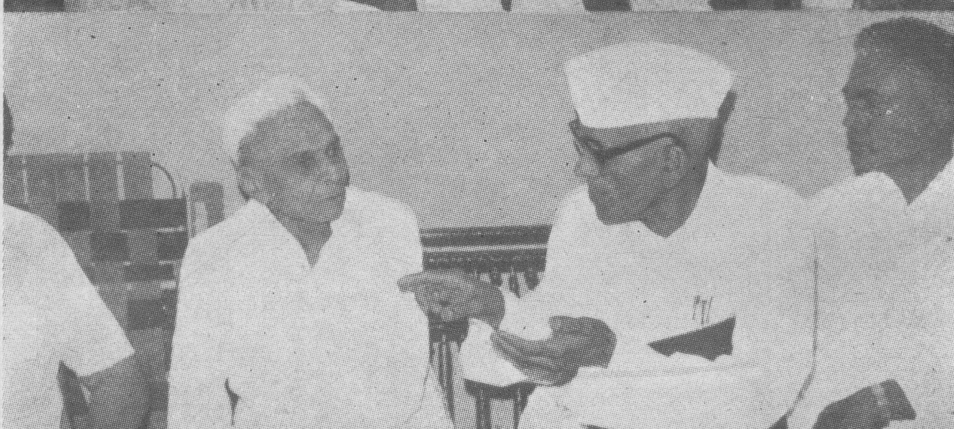

दक्षिण में जैन दर्शन एवं वाङ्मय के अध्ययन, गवेषणा आदि करणीय कार्यों के विषय में अहमदाबाद में डॉ० एच० सी० भायानी के समक्ष अपने विचार व्यक्त करते हुए डॉ० छगनलाल शास्त्री साथ में डॉ० सी० बालसुब्रह्मण्यन्। (प्रसंग देखें पृष्ठ १६ पर)

दलसुखभाई—'अब हम लोग वृद्ध हो गये हैं। अतः ज्यादा घूमना-फिरना नहीं चाहते। यहीं पर बैठे, जो कुछ कर सकते हैं, करते रहेंगे।'

डॉ. चन्द्रा का सुझाव :

इस पर डॉ. के. आर. चन्द्रा ने हम शिष्ट मण्डल के सदस्यों को उद्दिष्ट कर कहा—'बड़े विद्वानों का मार्गदर्शन प्राप्त करते रहने की आपकी भावना बहुत उत्तम है। आदरणीय दलसुखभाई जैसे विद्वानों का थोड़े समय के लिए भी मार्गदर्शन तथा सान्निध्य मिले तो बहुत लाभ हो सकता है। आप लोग थोड़े समय के लिए, जैसी वे विद्वान अनुकूलता समझें, उन्हें अपने यहाँ आने को निमन्त्रित करें। उनके आने-जाने की, ठहरने की समीचीन व्यवस्था करें। श्री दलसुखभाई जैसे विद्वानों को बुलाना चाहते हों तो यह उपयुक्त होगा कि उनके आने-जाने की व्यवस्था हवाई जहाज द्वारा हो, जिससे उनका समय कम से कम खर्च हो तथा उन्हें सुविधा रहे। समय-समय पर और भी विद्वान, जो अन्यान्य विश्व-विद्यालयों में, शोध-संस्थानों में कार्यरत हैं, कुछ समय के लिए आपके यहाँ आ सकते हैं, अपने अध्ययन तथा अनुभव का लाभ दे सकते हैं। विद्वानों को आमन्त्रित करने में भी आप यह ध्यान रखें, जो जो विद्वान् जिन-जिन विषयों के विशेषज्ञ हैं, उन-उन विषयों के लिए वे ही आहूत किये जायें। प्राकृत आदि की दृष्टि से ऐसी योजना के अन्तर्गत हम भी आपके यहाँ आने में प्रसन्नता का अनुभव करेंगे।'

अध्ययन-अध्यापन के संदर्भ में चर्चा :

पाठ्यक्रम, अध्ययन, अध्यापन, अनुसंधान आदि के संदर्भ में भी आदरणीय श्री दलसुखभाई के साथ विचार-विमर्श हुआ। उन्होंने इस विषय में एक महत्त्वपूर्ण सुझाव यह दिया—इस विभाग में जो भी विद्वान् कार्य करें, उनको प्राकृत एवं संस्कृत का अच्छा ज्ञान होना चाहिए, क्योंकि जैन धर्म के मूल ग्रन्थ प्राकृत में हैं तथा दार्शनिक ग्रन्थ व व्याख्या-साहित्य प्रायः संस्कृत में है। नौवीं शताब्दी तक प्रायः प्राकृत में ही साहित्य-रचना हुई, उसके पश्चात् अधिकांशतः संस्कृत में लिखा जाने लगा।

जो जिस विभाग की पीठ पर हो, उसे उस विभाग से सम्बद्ध मूल भाषा का ज्ञान अवश्य ही होना चाहिए ताकि वह सीधा उन ग्रन्थों को समझ सके, समझा सके, अनुवाद से किसी विषय को समझना मैं अपर्याप्त

मानता हूँ। मूल भाषा में विषय को जानने के साथ-साथ आधुनिक शैली में तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन तो आवश्यक है ही। अँग्रेजी का भी अच्छा ज्ञान होना चाहिए।

उनका दूसरा सुझाव था कि आपके यहाँ विश्वविद्यालय में जैनोलॉजी के विभाग में प्रोफेसर, रीडर, लेक्चरर ये जो तीन पद हैं, उनमें कम से कम एक पद पर किसी तमिल विद्वान् को लिया जाना चाहिए। तमिल तथा कन्नड़ में जैन साहित्य पर्याप्त मात्रा में लिखा गया। खोज करने पर आज तमिलनाडु में यत्र-तत्र अनेक हस्तलिखित पाण्डुलिपियाँ प्राप्त हो सकती हैं, जो जैन दर्शन तथा साहित्य से सम्बद्ध हों। उन पर बहुत कार्य किया जा सकता है, जो आवश्यक भी है।

इस प्रसंग में डॉ० सी० बालसुब्रह्मण्यन्जी ने कहा—'तमिल में जैन मूल ग्रन्थों पर व्याख्यात्मक साहित्य काफी परिमाण में रचित हुआ। अब तक वह अज्ञात एवं अछूता पड़ा है, उसकी गवेषणा की जानी चाहिए। अनेक नवीन तथ्य प्रकाश में आयेंगे।'

श्री दलसुखभाई—'इसलिये मेरा जोर देकर कहना है, आपके विभाग में एक व्युत्पन्न तमिल विद्वान् अवश्य होना चाहिए।'

मैंने उनकी सेवा में निवेदन किया कि आपका सुझाव बहुत उत्तम है। मैं इसे विश्वविद्यालय से सम्बद्ध महानुभावों को ज्ञापित करूँगा, जहाँ अपेक्षित होगा, प्रस्तुत करूँगा।

मैंने उनसे निवेदन किया, नये विद्वान् किस प्रकार तैयार करें, कृपया मार्गदर्शन प्रदान करें।

नये विद्वान् तैयार करने की विशेष योजना :

श्री दलसुखभाई कहा—'आपका कार्यक्षेत्र दक्षिण है, उस दृष्टि से मैं आपको एक आवश्यक, महत्त्वपूर्ण सुझाव और देना चाहता हूँ। जैन दर्शन के नये विद्वान् तैयार करने में आपको विशेष प्रयत्न करना होगा। दक्षिण में भारतीय दर्शन तथा संस्कृत आदि के बहुत अच्छे विद्वान् आपको उपलब्ध हो सकते हैं, जिनका अपने-अपने विषयों में तलस्पर्शी अध्ययन है। हिन्दू दर्शन की वेदान्त आदि विभिन्न शाखाओं के वहाँ काफी अच्छे विद्वान् हैं। तत्सम्बन्धी अनुसंधान कार्य भी वहाँ पर बहुत हुआ है। दर्शन व संस्कृत क्षेत्र के उत्साही, लगनशील विद्वानों को आप लोग अपने इस क्षेत्र में कार्यशील होने की प्रेरणा दें। इसका रूप यह होगा, आप उनको

संस्कृत का कोई जैन ग्रन्थ दें। उनसे कहें, इसका गहन अध्ययन करें, समीक्षात्मक, तुलनात्मक दृष्टि से परिशीलन करें तथा स्वयं इस पर लिखें। उनको एक विशिष्ट पुरस्कार-राशि देने का आश्वासन दें। मूलतः वे विद्वान् तो हैं ही, भाषा उनके पास है। भारतीय दर्शन का मौलिक ज्ञान उन्हें है। ३ वर्ष तक वे लगातार कार्य करेंगे तो उस विषय के मर्मज्ञ हो जायेंगे। साथ ही साथ एक ऐसा ग्रन्थ तैयार करके दे देंगे, जो जैन संस्कृति और साहित्य के क्षेत्र में उपयोगी होगा। इस तरह नये विद्वानों की एक पीढ़ी आप तैयार कर पायेंगे। वे आपके लिये बड़े लाभप्रद होंगे। दक्षिण के लोगों में अध्ययन के प्रति रुचि है, विषय की पकड़ है, लगन है।'

हमारे शिष्ट मण्डल के विशिष्ट सदस्य डॉ० सी० बालसुब्रह्मण्यन् जी को यह सुझाव बहुत उत्तम लगा। उन्होंने कहा—वास्तव में ऐसा कर हम अवश्य ही उत्तम कोटि के विद्वान् तैयार कर सकते हैं, जो जैनोलॉजी के क्षेत्र में अच्छी सेवाएँ दे पायेंगे।

डॉ० अमरचन्दजी, डॉ० शास्त्रीजी तथा मुझे—हम सब को श्री मालवणियाजी सा० का यह सुझाव बहुत उपयोगी प्रतीत हुआ।

मैंने उनकी सेवा में निवेदन किया—'हम लोग आपके सुझाव को क्रियान्वित करने का प्रयास करेंगे।'

एल० डी० इन्स्टीट्यूट का विशाल पुस्तकालय :

वार्तालाप के बाद हम नीचे अण्डर-ग्राउण्ड हॉल में आये, जहाँ इन्स्टीट्यूट का विशाल पुस्तकालय है। पुस्तकालय देखकर हमें अत्यन्त प्रसन्नता हुई। पुस्तकालय की बहुत सुन्दर व्यवस्था है। भोज-पत्र, ताड़-पत्र आदि पर लिखित प्राचीन पाण्डुलिपियों को बड़े समीचीन रूप में रखा जाता है। नवीन साहित्य की भी विषयानुक्रम की दृष्टि से उत्तम व्यवस्था है।

आदरणीय मालवणियाजी ने बताया कि यहाँ जो प्राचीन पाण्डु-लिपियाँ हैं, वे अधिकांशतः आगमरत्नाकर स्व० मुनि श्री पुण्यविजयजी म० द्वारा समुपहृत हैं। उन्होंने अपना सारा विशालकाय सग्रह इस संस्थान को भेंट कर दिया। यह सुनकर हम स्व० मुनिवर्य श्री पुण्यविजयजी म० के प्रति श्रद्धाविभोर हो उठे। कितना महान् कार्य उन्होंने किया। अपने जीवनकाल में ही अपना संग्रह एक ऐसे संस्थान को सौप दिया, जहाँ

उसका बड़ा अच्छा उपयोग हो रहा है, होता रहेगा। कितना अच्छा हो, जिनके पास प्राचीन संग्रह हैं, वे पुण्यश्लोक मुनि श्री पुण्यविजयजी म० के कदमों का अनुसरण करें।

पुस्तकालय देखने के बाद हम लोग कला-संग्रहालय में आये, जो इन्स्टीट्यूट कम्पाउण्ड में ही निर्मित है। उसे देखा। प्राचीन कलात्मक मूर्तियाँ, चित्रावली आदि देखकर मन में प्रेरणा जागी।

एक अनवरत कार्यनिरत वृद्ध मनीषी :

अहमदाबाद जैन विद्या का भारतवर्ष में सुप्रसिद्ध केन्द्र है। अपने सीमित कार्यक्रम के बावजूद हम यहाँ अन्य विशिष्ट विद्वानों से भी भेंट करना चाहते थे। उत्साही विद्वान डॉ. के. आर. चन्द्रा ने हमें बड़ा सहयोग दिया। उनके साथ हम डॉ. एच. सी. भायानी एम. ए., पी-एच. डी. के निवास स्थान पर गये। डॉ. भायानी प्राकृत के बहुत बड़े विद्वान हैं। उनका प्राकृत, अपभ्रंश, भाषा-शास्त्र, कथा-साहित्य आदि पर महत्वपूर्ण कार्य है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से वे प्राकृत, अपभ्रंश आदि के मर्मज्ञ विद्वान हैं। इस समय वे गुजरात सरकार द्वारा दिये गये एक विशिष्ट साहित्य कार्य में संलग्न हैं।

एक वृद्ध पुरुष को, जिनका मस्तक श्वेत केश-राशि से आच्छन्न था, युवोचित उत्साह के साथ जब हमने अनवरत कार्यनिरत देखा तो हमारा मस्तक श्रद्धा से उनके चरणों में झुक गया। उन्होंने बड़े ही स्नेह से हमारा स्वागत किया एवं बताया कि हमारे आने का उन्हें पत्र मिल चुका था।

हमने डॉ. भायानीजी को मद्रास में हुए जैनोलॉजी सम्बन्धी कार्य से अवगत कराया। मद्रास विश्वविद्यालय में जैनोलॉजी का स्वतन्त्र विभाग खुला है, यह जानकर उन्होंने बड़ी प्रसन्नता व्यक्त की।

डॉ. भायानी ने भारत के प्राचीन वाङ्मय के सन्दर्भ में चले वार्तालाप और विचार-विमर्श के बीच बतलाया कि हमारी अनेक प्राचीन ऐसी कथाएँ हैं, जिनका मूल स्रोत हमें प्राकृत में ही प्राप्त होता है। प्राकृत में जो साहित्य रचित हुआ, वह जन-जन के लिए था, लोक-साहित्य था। वहाँ लोक-जीवन का हमें यथार्थ चित्रण प्राप्त होता है। प्राचीन कथा-साहित्य संस्कृत में तथा अन्य भाषाओं में बाद में आया।

प्राकृत में अधिकांशत: जैन आचार्यों, मुनियों तथा विद्वानों का कृतित्व है। प्राकृत-साहित्य पर जर्मनी आदि में भी खोज हुई है। यहाँ भी कुछ

कार्य हुआ है। अभी बहुत कार्य किये जाने की आवश्यकता है। वैसा होने पर कथाओं में संग्रथित अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्य प्रकाश में आ सकते हैं। प्राकृत कथा साहित्य विश्व के कथा साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। कुछ ऐसी कथाएँ प्राकृत में मिलती हैं, जिनका पश्चिम में भी रूपान्तर हुआ।

इन सौम्यचेता, सरल, सहृदय विद्वान से मिलकर हम हर्ष-विभोर हो उठे। डॉ. भायानीजी ने अन्त में डॉ. सी. बालसुब्रह्मण्यन्जी, डॉ. शास्त्रीजी, डॉ. अमरचन्दजी तथा मेरे प्रति बड़े स्नेहोद्गार प्रकट किये और विभाग के लिए अपनी मंगल-कामनाएँ प्रस्तुत कीं।

चलते-चलते डॉ. शास्त्रीजो ने डॉ. भायानीजी से निवेदन किया कि आप बहुत बड़े अनुभवी विद्वान हैं। जब-जब हम चाहें, तब कृपया यहाँ बैठे-बैठे भी अपना मार्गदर्शन देते रहें, हम आभारी रहेंगे।

उन्होंने कहा—आभार मानने की कोई बात नहीं है। यह तो सारस्वत उपासना का पवित्र काय है। मैं जैसा हूँ, सदा आपको विचारों द्वारा सहयोग करने में तत्पर रहूँगा।

एक स्फूर्तचेता : क्रान्तद्रष्टा विद्वान

डॉ. भायानीजी से विदा लेकर डॉ. के. आर. चन्द्रा के साथ हम लोग डॉ. नगीनभाई शाह एम० ए०, पी-एच० डी० के आवास-स्थान पर आये। डॉ० नगीनभाई शाह बड़े मंजे हुए विद्वान हैं। संस्कृत आदि मूल भाषाओं के माध्यम से उनको जैन प्रमाणशास्त्र, प्राचीन न्याय, नव्य न्याय आदि भारतीय दर्शन की अनेक शाखाओं का गहन, समीक्षात्मक अध्ययन है। वे बहुत ही उत्साही और स्फूर्तचेता हैं। आदरणीय मालवणियाजी के अवकाश ग्रहण करने के बाद वे कुछ समय एल. डी. इन्स्टीट्यूट के निदेशक भी रहे हैं।

मैंने उन्हें रिसर्च फाउण्डेशन फॉर जैनोलॉजी के माध्यम से जैन विद्या के सन्दर्भ में हो रहे कार्य एवं मद्रास विश्वविद्यालय में नवस्थापित जैन विद्या विभाग के सम्बन्ध में बतलाया। डॉ. नगीनभाई बोले—हमने समाचार पत्रों में इस सम्बन्ध में पढ़ा था। हमें तब यह पढ़कर आश्चर्य-मिश्रित हर्ष हुआ कि आपके इस कार्य का नेतृत्व एक आइ. पी. एस. पुलिस अधिकारी कर रहे हैं। मद्रास के पुलिस कमिश्नर श्री श्रीपालजी आपके फाउण्डेशन के चेयरमेन हैं। एक पुलिस उच्च अधिकारी की विद्या और तत्त्वज्ञान के कार्य में ऐसी अभिरुचि वास्तव में प्रशंसास्पद है। आपके गठन, विधिक्रम आदि देखते हुए हमें प्रतीत होता है, आपके यहाँ इस

कार्य के प्रति बड़ा उत्साह है । दक्षिण में, जहाँ कभी जैन विद्या का व्यापक प्रसार था, जो आज लगभग नहीं के बराबर है, पुन: एक उत्साहपूर्ण वातावरण आप लोगों ने तैयार किया है, वह सर्वथा प्रशंसनीय है । हमारा गुजरात जैन परम्परा का आज भी बड़ा केन्द्र है । साधुओं तथा श्रावकों दोनों की दृष्टि से यह बहुत समृद्ध है पर यहाँ प्राकृत और जैन दर्शन के अध्ययन में, आधुनिक पद्धति से उसके विकास में बहुत बड़ा उत्साह दृष्टि-गोचर नहीं होता ।

विश्वविद्यालय के स्वतन्त्र विभाग का महत्त्व :

विश्वविद्यालय में जैनोलॉजी के स्वतन्त्र विभाग खुलने पर डॉ. नगीनभाई ने बहुत परितोष व्यक्त किया । उन्होंने कहा—प्राइवेट इन्स्टीट्यूट्स में और विश्वविद्यालय के कार्य में बड़ा अन्तर है । प्राइवेट इन्स्टीट्यूट्स में विद्वान सर्वथा निष्पक्ष होकर लिख सकें, यह कम सम्भव है । क्योंकि वहाँ यदि कोई विद्वान ऐसा लिखे, जो प्राचीन परम्परा के विरुद्ध जाये, चाहे वह कैसा ही अनुसंधानपूर्ण एवं युक्तिपूर्ण क्यों न हो, बहुत सम्भव है, संस्थान के संचालक उसे पसन्द नहीं करें । उसे अन्यथा मानें । अपनी परम्परा के विरुद्ध, मान्यता के विरुद्ध सुनने का उनमें धैर्य नहीं है । हिन्दुओं में रामायण पर, महाभारत पर, पुराणों पर चर्चाएँ चलती हैं । उनमें कुछ अंश प्रक्षिप्त माने जाते हैं । प्रक्षिप्त भी भिन्न-भिन्न रूप में कहे जाते हैं । यह सब चलता है, उसमें कोई खीझ की स्थिति नहीं आती, किन्तु जैनों में ऐसी सम्भावना नहीं है । वे किसी एक ही विषय में उसके परम्परा-स्वीकृत रूप में चिन्तन की स्वतन्त्रता देने में हिचकिचाते हैं । यही कारण है, प्राइवेट संस्थाओं में शोध के सन्दर्भ में झट यह बात सामने आ जाती है । शोध में कोई बात संचालकों के मानस के या मान्यता के विपरीत जाती दिखाई देती है तो उसमें बाधा उपस्थित कर देते हैं । उस कार्य को रोक देते हैं । अनुसंधान का तो अर्थ ही यह है—गवेषणापूर्वक तथ्य उद्घाटित किये जायें । वे प्राचीन मान्यताओं के अनुकूल भी हो सकते हैं, प्रतिकूल भी हो सकते हैं । यदि प्रतिकूल होना किन्हीं को ठीक न लगे तो वे और खोज कर, नये तथ्य सामने लायें अथवा प्राचीन को युक्ति द्वारा, प्रमाण द्वारा परिपुष्ट करें, सिद्ध करें । अफसोस की बात है, दृष्टिकोण में ऐसी उदारता कम देखी जाती है ।

नगीनभाई ने इसी सन्दर्भ में आगे कहा—प्राइवेट संस्थाओं में एक कठिनाई और है । जो धनी सज्जन उनका संचालन करते हैं, वे तो प्रोड-

क्शन देखना चाहते हैं। वे प्रोडक्शन के जीवन में रहते हैं। देखते हैं, उनकी मिल में प्रतिदिन, प्रतिघण्टे इस अनुपात से प्रोडक्शन होता है। वे अपने द्वारा संचालित शोध-संस्थानों में शोधरत विद्वानों के कार्य में भी कुछ इस प्रकार का प्रोडक्शन देखना चाहते हैं। उनके अनुसार इतने घण्टे, इतने दिन कार्य करते हो गये तो उन घण्टों तथा दिनों के अनुपात से इतना प्रोडक्शन होना चाहिए। किन्तु अनुशीलन, अनुसंधान का विषय भिन्न है। कभी-कभी तो एक-एक पंक्ति पर दो-दो घण्टे व्यतीत हो जाते हैं। कभी-कभी तो पाँच-पाँच दिन तक लिख ही नहीं पाते। यों जब कुछ प्रोडक्शन प्राप्त नहीं होता तो ये सोचते हैं, ये विद्वान बैठे-बैठे क्या करते हैं ?

विश्वविद्यालय में यह नहीं होता। वहाँ स्वतन्त्र, निष्पक्ष चिन्तन की सुविधा है, क्योंकि विश्वविद्यालय तो एक व्यापक विद्या मन्दिर है। किसी धर्म या सम्प्रदाय का नहीं, सब का है। वहाँ स्वतन्त्र चिन्तन तथा गवेषणापूर्वक जो भी तथ्य उद्घाटित होंगे, उनका विरोध नहीं, स्वागत होगा। विश्वविद्यालयों में सर्वत्र इसी पद्धति से कार्य होता है। वहाँ यह परम्परा है, अनुकूल प्रतिकूल निष्कर्षों का प्रश्न आता ही नहीं। वहाँ का वातावरण तथा मानसिक स्तर इसी कोटि का होता है। व्यवस्थाएँ भी इसी कोटि की होती हैं।

मैंने डॉ. नगीनभाई से निवेदन किया—आपने प्राइवेट संस्थाओं के सम्बन्ध में जो बात कही, वह अवश्य विचारणीय है। हमने तो जैन विद्या के अध्ययन अनुसंधान हेतु प्राइवेट शोध संस्थान के रूप में कार्य प्रारम्भ न कर विश्वविद्यालय में एक स्वतन्त्र विभाग प्रस्थापित करवाया। हमारा रिसर्च फाउण्डेशन, विभाग को फीड करेगा। उसके विकास एवं उन्नयन में सहयोग देगा। कार्य सब विश्वविद्यालय में ही होंगे।

करणीय शोध-कार्य :

हम लोगों ने डॉ. शाह से जिज्ञासित किया कि अनुसंधान में किन-किन प्रोजेक्ट्स को ग्रहण करना अधिक उपयोगी होगा ?

डॉ. शाह ने कहा—जैन विद्या के क्षेत्र में अनेक विषय ऐसे अछूते पड़े हैं, जिन पर बहुत कार्य किया जा सकता है। मेरा सुझाव यह है कि संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़ तथा तमिल में जो अप्रकाशित प्राचीन साहित्य पड़ा है, उनमें से उत्तम-उत्तम कृतियाँ छाँटी जायें तथा उन पर शोध कार्य किये जायें। हमारा कार्य ठोस होना चाहिए, गहन अध्ययन पर आधृत

होना चाहिए। निष्कर्ष रूप में विद्वत्तापूर्ण उपलब्धियाँ उससे उभरें, ऐसा होना चाहिए।

विद्वानों की कमी : पूर्ति :

मैंने कहा—देश में प्राच्य विद्या के क्षेत्र में विद्वानों की उत्तरोत्तर कमी होती जा रही है, प्राकृत तथा जैनोलॉजी के क्षेत्र में तो और भी कमी आ रही है। इस सम्बन्ध में आपका क्या चिन्तन है ?

डॉ. नगीनभाई ने कहा—जो भी कोई किसी क्षेत्र में प्रवृत्त होता है, वह अपने जीवन का भविष्य सोचकर आता है। इन विषयों में आज स्थिति यह है कि आगे चलकर आजीविका की दृष्टि से कोई उज्ज्वल भविष्य दृष्टिगोचर नहीं होता। इसलिए मेधावी छात्र इधर नहीं आ पाते। क्योंकि वे यह सोचते हैं कि यदि हम इस विषय के विद्वान बनेंगे तो हमें कार्य कहाँ मिलेगा ? इसलिए विद्यार्थियों में इस ओर उत्साह कम दृष्टिगोचर होता है। आपको मेधावी छात्रों को इस ओर विशेष रूप से प्रेरित करना होगा। छात्रवृत्ति देनी होगी। आगे के लिए भी चिन्तन करना होगा कि उनको उनकी योग्यता के अनुरूप कार्य प्राप्त हो सके।

मैंने निवेदन किया कि वैसे भारत के विश्वविद्यालयों में कई जगह प्राकृत तथा जैन दर्शन का अध्ययन होता है, शोध-संस्थान भी हैं। इन सबके लिए अच्छे विद्वानों की आप आवश्यकता मानंते ही हैं और आप यह भी मानते हैं कि अच्छे विद्वान प्राप्त नहीं हैं।

डॉ. नगीनभाई बोले—ये स्थान सीमित हैं। अतएव मेधावी विद्यार्थी आश्वस्त नहीं हैं। पहले हमें मेधावी छात्रों को पकड़कर लाना होगा। उन्हें एब्जोर्ब किया जा सके, ऐसा ध्यान में रखना होगा। उत्कृष्ट कोटि के विद्वान तैयार करने के लिए अच्छे विद्यार्थियों को विशिष्ट विद्वानों के यहाँ भेजना होगा। जैसे हमारे यहाँ प्राचीन पद्धति थी, विद्यार्थी गुरुओं के घर पर उच्च अध्ययन हेतु जाते थे। यह बात मैं इसलिए कह रहा हूँ कि आज देश में जैन विद्या के जो गिने-चुने थोड़े से उत्तम कोटि के विद्वान हैं, वे अपने-अपने स्थानों में व्यस्त हैं, कार्य-संलग्न हैं। वे आपके यहाँ अपना स्थान छोड़कर आना नहीं चाहेंगे। क्योंकि अपने-अपने स्थानों में अपनी पारिवारिक अनुकूलताएँ होती हैं। जैसे मुझे आप प्रोफेसर का वेतन देकर या उससे अधिक भी देकर ले जाना चाहें तो नहीं जाना चाहूँगा क्योंकि मैं, मेरा परिवार, बच्चे सब यहां सुव्यवस्थित रूप में जमे हुए हैं। उनके अध्ययन, भावी कार्य आदि की दृष्टि से यहाँ सुविधाएँ तथा अनुकूलताएँ

हैं। इसलिए अभी आपको प्रारम्भ में सीनियर विद्वान मिलने सम्भव नहीं हैं। आपको जूनियर ही लेने होंगे।

एक बात और है, मेरा तो, हमारे बुजुर्ग विद्वान क्षमा करेंगे, उन पर एक विनम्र आरोप भी है, उन्होंने ऐसे विद्वान तैयार क्यों नहीं किये, जो आगे चलकर उनका स्थान ले सकें, उनके कार्यों की पूर्ति कर सकें।

एक दूसरी बात और सोचने की है। आज रिसर्च इन्स्टीट्यूट्स तो खूब खुल रहे हैं, बढ़ रहे हैं। अध्ययन तथा शोध-कार्य कितना बढ़ रहा है, कितना गतिशील है, यह देखना होगा। हम गुजरात में देख रहे हैं कि प्राकृत चालू की गई पर अब लगभग उठ जाने की स्थिति में है। वास्तविकता यह है, कहीं कालेज में इसे खोला जाता है तो दो या तीन विद्यार्थी आते हैं। एक क्लास चलाने के लिए कम से कम दस विद्यार्थी तो चाहिए ही, जबकि पाँच भी नहीं होते।

मैंने उनसे निवेदन किया—दक्षिण भारत में जैनों में आर्थिक दृष्टि से सम्पन्नता है। उनके अपने धार्मिक संस्थान हैं। वे बालक-बालिकाओं को धार्मिक शिक्षण दिलाना चाहते हैं।

डॉ. नगीनभाई—यह तो पाठशाला की बात हुई, पारम्परिक रूप में धर्म सिखाने वाले पण्डितों की बात हुई। हम यहाँ विश्वविद्यालय-स्तरीय अध्ययन, अनुसंधान की चर्चा कर रहे हैं, जो इससे भिन्न विषय है।

मैंने इस सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए कहा—हम विश्वविद्यालय की ओर से एम. ए. से पूर्व तीन और कोर्स रखवाने का प्रयास कर रहे हैं—

१. सर्टीफिकेट कॉर्स इन जैनोलॉजी
२. डिप्लोमा कोर्स इन जैनोलॉजी
३. हाइअर डिप्लोमा कोर्स इन जैनोलॉजी

जिससे एम. ए. से पूर्व भी शिक्षार्थियों को जैन दर्शन का अच्छा ज्ञान हो जाए। इसके साथ-साथ यह भी हमारा चिन्तन है कि इन पाठ्यक्रमों को जो छात्र उत्तीर्ण कर लेंगे, उनको हम अपने व्यापारिक प्रतिष्ठानों में नियुक्ति देने में प्राथमिकता बरतेंगे। क्योंकि वे अपने विषय की जानकारी के साथ-साथ जैन धर्म की जानकारी लिये होंगे, धर्मानुप्रेरित होंगे।

डॉ. नगीनभाई—यहाँ एक बात आपके सोचने की है। मान लीजिए, आपके व्यावसायिक प्रतिष्ठान में सर्विस के लिए दो व्यक्ति आते

हैं—पहला बी. काम. फर्स्ट क्लास है तथा दूसरा बी. काम. आर्डिनरी है, लेकिन उसने आपका सर्टीफिकेट कोर्स या डिप्लोमा कोर्स किया है, आप दोनों में से किसको प्राथमिकता देंगे ?

मैंने कहा—जो जैनोलॉजी में सर्टीफिकेट कोर्स या डिप्लोमा कोर्स उत्तीर्ण किये हुए है उसको पहले अवसर देंगे, वह जैन सिद्धान्त पढ़ा है। आशा करते हैं, वह अपेक्षाकृत विशेष कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति होगा।

डॉ. नगीनभाई—जैन सिद्धांत पढ़ना व वैसा जीवन होना—ये दो बातें हैं। जिसने जैन सिद्धांत पढ़े हों, वह उन सिद्धांतों के अनुरूप जीवन का व्यक्ति हो, यह कोई गारन्टी नहीं है।

मैंने कहा—मैं भी मानता हूँ, गारन्टी तो नहीं है, फिर भी यदि शिक्षणक्रम में हम ज्ञान-प्रधानता के साथ-साथ चरित्रनिष्ठता पर भी जोर दें, मनोवैज्ञानिक विधि से तदनुरूप शिक्षण दें तो हमें आशा करनी चाहिये कि जैन सिद्धांतों को पढ़ने वाले व्यक्ति औरों से ठीक निकलेंगे।

शोध-संस्थान : अपेक्षित :

विश्वविद्यालयीय गतिविधि सम्बन्धी बातचीत के बीच डॉ. के. आर. चन्द्रा ने यह सुझाव दिया कि विश्वविद्यालय में विभाग खुल गया, यह अच्छा है, किन्तु विभाग को बल देने के लिए, स्फूर्त बनाये रखने के लिए आपको अपना शोध-संस्थान भी चलाना होगा। वह विभाग को सतत जागरूक तथा क्रियाशील रखने में सहयोगी होगा। शिक्षार्थियों एवं शोधार्थियों को शिक्षण व शोध हेतु प्रेरित करेगा, शिक्षण व शोध में सहयोग करेगा।

मैंने कहा—आपके विचारों से मैं सहमत हूँ। आदरणीय डॉ. छगनलालजी शास्त्री, जो इस कार्य के सन्दर्भ में हमारे प्रारम्भ से ही मार्गदर्शक हैं, शुरू से ही यह कहते रहे हैं तथा मैं और मेरे साथी भी इस यथार्थता को स्वयं सनुभव कर रहे हैं। फाउण्डेशन को अपना रिसर्च इन्स्टीट्यूट चलाना ही चाहिए। हम सब इस सम्बन्ध में प्रयत्नशील होंगे।

उत्क्रान्त चेतना :

मैं एक बात और निवेदित करना चाहता हूँ, जैन समाज में प्रतिभा है, समृद्धि है, किन्तु विभिन्न सामाजिक व्यक्ति एक साथ मिलकर कार्य नहीं कर सकते। इस सम्बन्ध में मेरा ऐसा विचार है, हमारे आचार्य तथा साधु लोग अपने-अपने श्रावकों का एक दायरा, घेरा लिये चलते हैं, जो

संकीर्णता बढ़ने का हेतु है। मैं यों कहूँ तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि वे हमको परस्पर मिलकर कार्य करने की स्थिति में आने ही नहीं देते। इसलिए मेरा मन्तव्य यह है कि हम श्रावक लोग, चाहे किन्हीं भी सम्प्रदायों के हों, एक संगठन बनायें, जो उदारतापूर्ण दृष्टिकोण पर टिका हो।

डॉ. नगीनभाई—मैं आपको इससे भिन्न बात कहूँगा, केवल साधु ही नहीं, श्रावक भी इस दिशा में दोषी हैं। वे एक साधु को लेकर चलते हैं। श्रावक साधुओं से अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाना चाहते हैं और साधु श्रावकों से। इसलिए इससे भी और अधिक आगे प्रगति तथा क्रांति की बात सोचनी होगी।

मैंने कहा—आप जैसे विद्वानों का मार्गदर्शन रहा तो इस ओर हम गतिशील होंगे। हाँ, एक बात मैं आपसे निवेदन करना चाहूँगा, जैसा कि माननीय श्री दलसुखभाई से अनुरोध किया, आप भी कृपया, जब आपको हम आमन्त्रित करें, विश्वविद्यालय आमन्त्रित करे, विजिटिंग प्रोफेसर आदि के रूप में हमें अवश्य लाभान्वित करें।

डॉ० नगीनभाई—आप लोगों का उत्साह व लगन देखते हुए हमें आशा है, आपका कार्य प्रगति करेगा। हम भी जितना, जैसा संभव हो सकेगा, यह प्रयत्न करेंगे, आपके यहाँ समय दे सकें। अन्त में मैं एक बात आपसे कहूँ, आप सदा ध्यान रखिये, जो विद्वान् कार्य करें, उन्हें आप समुचित रूप में पुरस्कृत करें, उनके कार्य का महत्त्व आंकें। यदि इस वृत्ति से कार्य करेंगे तो विद्वानों की बहुमूल्य सेवाएँ प्राप्त हो सकेंगी।

डॉ. नगीनभाई के यहाँ विचार-विमर्श करने के बाद डॉ. के. आर. चंद्रा को हमने धन्यवाद देकर बिदा किया। डॉ० चन्द्रा विद्वानों से सम्पर्क कराने में हमारे बड़े सहयोगी रहे। हमें यह जानकर और अधिक प्रसन्नता हुई, डॉ० चन्द्रा और हमारे शिष्ट मण्डल के विशिष्ट सदस्य डॉ० छगनलालजी शास्त्री बिहार विश्वविद्यालय में अपने शोध कार्य के सन्दर्भ में रिसर्च इंस्टीट्यूट ऑफ प्राकृत, जैनोलॉजी एण्ड अहिंसा, मुजफ्फरपुर में साथ रहे हैं।

डॉ० नगीनभाई के यहाँ से हम श्रीमान् मालवणियाजी के घर आये। विद्वानों से जो वार्तालाप हुआ, उससे उन्हें अवगत कराया।

मालवणियाजी का ७५वाँ जन्म-दिवस :

इन अखिल भारतीय ख्याति के विद्वानों से विस्तृत चर्चाएं कर हम

लोग अपने स्थान पर आए। आदरणीय डॉ० छगनलालजी शास्त्री ने एक बड़े महत्त्व की बात कही, जिस पर हमारा ध्यान नहीं गया था। उन्होंने कहा कि श्री दलसुखभाई के मुँह से वार्तालाप के समय अनायास निकल गया था कि उनका कल ७५वाँ जन्म दिवस है। एक ऐसा संयोग बन गया है, हम यहाँ आये हुए हैं, कल हम उनको वर्धापित करें, अभिनन्दित करें, शुभकामनाएं प्रकट करें। डॉ० शास्त्रीजी का यह सुझाव हम सबको बहुत सुन्दर लगा। वास्तव में बातचीत के समय हम लोगों का इस ओर ध्यान ही नहीं गया था। डॉ० शास्त्रीजी ने बड़ी मार्मिक बात गृहीत की। मैंने इस सतर्कता के लिये उनको साधुवाद दिया। दूसरे दिन अपराह्न में हम लोग चन्दन की मालायें लेकर श्री मालवणियाजी के यहाँ गये। डॉ० शास्त्रीजी ने उनके अभिनन्दन एवं शुभकामना के रूप में संस्कृत में श्लोक-रचना की, जिसे वे अपने साथ लिये थे। हम सब तैयारी के साथ श्री मालवणिया सा० के यहाँ पहुँचे, तो वे हमें देखकर बड़े आश्चर्यान्वित हुए, क्योंकि वे अपने जन्मदिवस पर कभी कोई समारोह आयोजित नहीं करते, न कभी अपने मित्रों तथा प्रशंसकों से इसकी चर्चा ही करते हैं। वे ख्याति, प्रशस्ति से सर्वथा अतीत हैं, विद्यानिष्ठ महापुरुष हैं। डा. शास्त्रीजी ने उनसे निवेदन किया, आपने हमें बताया तो नहीं, किन्तु बातचीत के बीच, विद्वानों के वय-क्रम की चर्चा के प्रसंग में आपके मुख से ऐसा कुछ निःसृत हुआ, जिससे मैंने यह समझ लिया कि कल आपका ७५वां जन्म-दिवस है। शुभ संयोगवश हम यहाँ हैं तो आपको वर्धापित, अभिनन्दित करने का अवसर कैसे खोएं ? आप यह सब नहीं चाहते किंतु जैन विद्या एवं भारतीय विद्या के क्षेत्र में आप द्वारा की गई सेवाओं का समादर करना हम सबका, इस क्षेत्र में कार्यरत जनों का परम कर्तव्य है।

श्रीमान् पं० दलसुखभाई बहुत ही सरल, सौम्यचेता एवं संकोचशील पुरुष हैं। हम लोगों की इतनी उत्कण्ठापूर्ण भावनाएँ उनके समक्ष थीं, वे क्या कहते।

मैंने, डॉ० सी बालसुब्रह्मण्यन्‌जी ने, डॉ० छगनलालजी शास्त्री ने, डॉ० अमरचन्दजी ने मालवणिया सा० को चन्दन के हार भेंट किये। डॉ० शास्त्रीजी ने इस अवसर पर जो संस्कृत में श्लोक रचे थे, उनको अपने धीर, गंभीर स्वर में उच्चारित किया और श्लोक पत्र श्री मालवणियाजी को सादर, सस्नेह भेंट किया।

वे श्लोक निम्नांकित हैं—

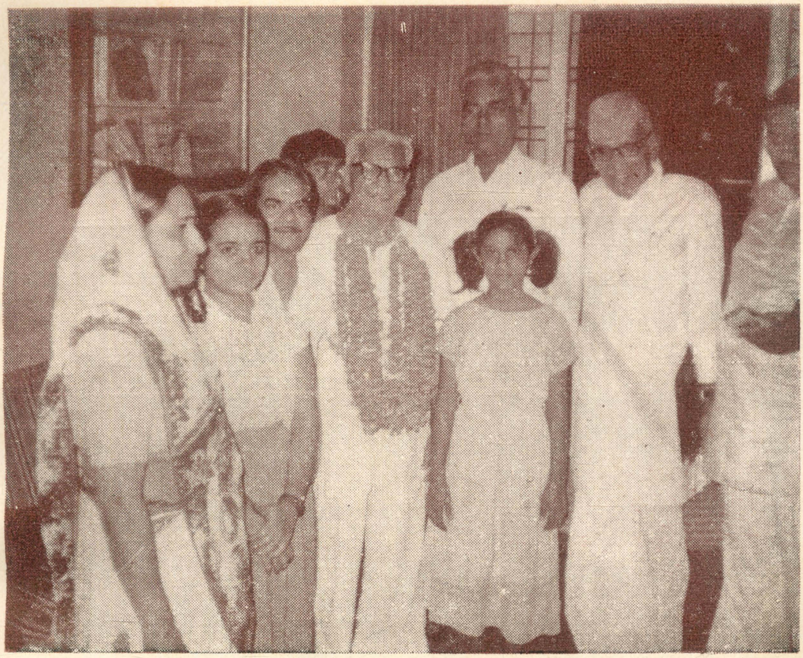

पं० दलसुखभाई मालवणिया के पारिवारिकजनों के साथ—

बीच में—पं० दलसुखभाई मालवणिया, उनके पारिवारिक सदस्य, दाहिनी ओर से—प्रथम—श्री एस० कृष्णचन्द चोरड़िया, दूसरे—डॉ० छगनलाल शास्त्री, तीसरे—डॉ० सी० बालसुब्रह्मण्यन् ! पं० दलसुखभाई, श्री चोरड़िया के अनुरोध पर अपने उद्गार प्रकट करते हुए। सन्दर्भ पृष्ठ २५ पर पढ़िए

उज्जैन में जयपुर नरेश, उद्भट ज्योतिर्विद स्व० सवाई जयसिंह द्वारा; निर्मापित ज्योतिषवेधशाला में—

बांये से प्रथम—डॉ० बी० बी० रायनाडे, दूसरे—डॉ० छगनलाल शास्त्री, तीसरे—डॉ० सी बालसुब्रह्मण्यन् । प्रसंग सन्दर्भ पृष्ठ ३० पर पढ़िए

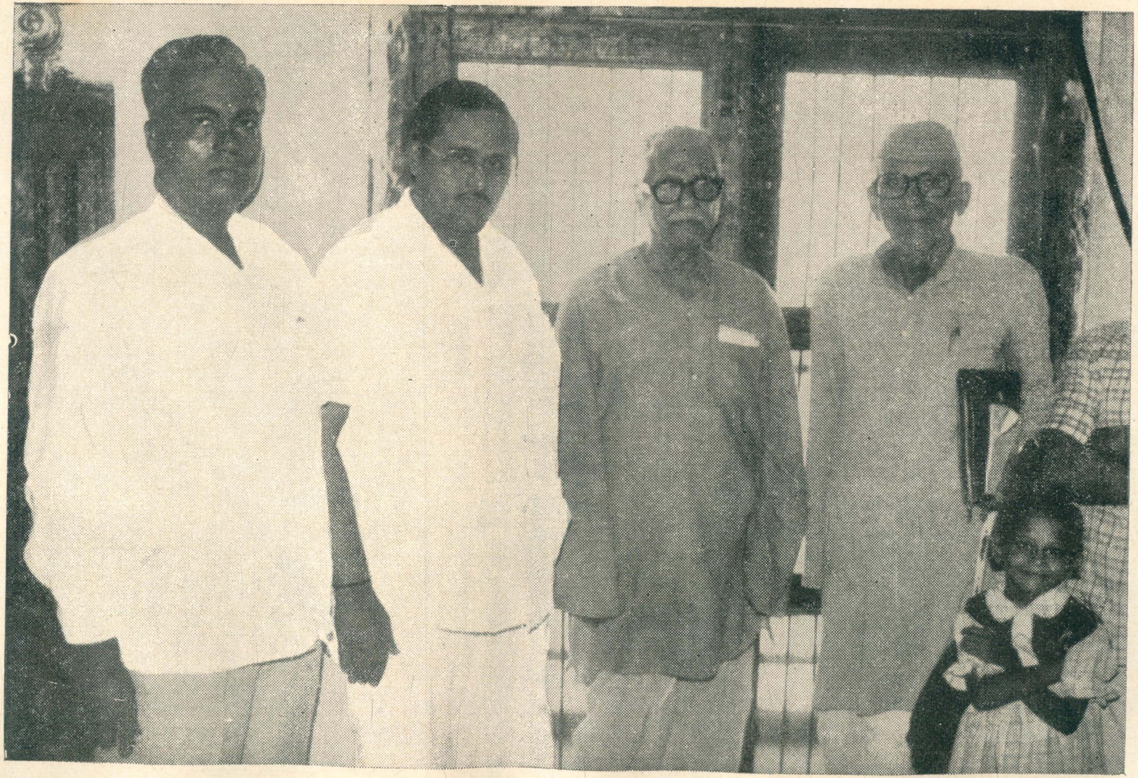

स्याद्वाद महाविद्यालय, वाराणसी में देश के मूर्धन्य जैन विद्वान सिद्धान्ताचार्य पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री के साथ—
बांये से प्रथम—डॉ० सी० बालसुब्रह्मण्यन्, दूसरे—श्री एस० कृष्णचन्द चोरड़िया, तीसरे—पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री, चौथे—डॉ० छगनलाल शास्त्री।

सन्दर्भ देखिए पृष्ठ ३६ पर

सौम्यचेता सुधीर्धीरो, ज्ञान-विज्ञान-भूषितः ।
त्यागनिष्ठस्तपोनिष्ठो, भारत्याराधने रतः ।।
स्वास्थ्यं सौख्यं शतायुष्यं, निर्मलमुज्ज्वलं यशः ।
लभेत लोक-सम्मान्यः, श्रियं दलसुखो बुधः ।।

त्याग एवं सेवा का आदर्श :

इस शुभ अवसर पर मैंने आदरणीय मालवणियाजी से निवेदन किया, आपका तो सारा जीवन ही जैन दर्शन तथा जैन विद्या की सेवा में लगा है । रिसर्च फाउण्डेशन फॉर जैनोलॉजी की ओर से मैं निवेदित करता हूँ कि अपने ७५वें जन्मदिवस के अवसर पर आप हमें कृपया प्रेरणा तथा शुभाशीर्वाद दीजिये ।

परमश्रद्धेय श्री दलसुखभाई ने अपने सरल, सहज शब्दों में अपने हृदय के उद्गार प्रकट करते हुए कहा—

मेरे जीवन का प्रारम्भ एक अनाथ आश्रम से होता है । मैं १० वर्ष का था, मेरे पूज्य पिता स्वर्गवासी हो गये । सात वर्ष तक मैंने एक अनाथाश्रम में शिक्षा प्राप्त की । तत्पश्चात् मैं शिक्षा प्राप्त करने बीकानेर गया । वहाँ अखिल भारतवर्षीय स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स की ओर से जैन दर्शन के शिक्षण की विशेष व्यवस्था थी । तीन वर्ष तक मैंने वहाँ अध्ययन किया । फिर मैं अध्ययन हेतु शांति निकेतन विश्व भारती गया । कुछ समय वहाँ बौद्ध धर्म का अध्ययन किया । तदनन्तर मैं अ० भा० स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स के मुख-पत्र 'जैन प्रकाश' में कार्य करने हेतु बम्बई आ गया । वहाँ कार्य तो करता था, किन्तु मन में संतोष नहीं था— मैं क्या पढ़ा हूँ, क्या कर रहा हूँ । संयोग ऐसा बना, एक बार पूज्य पं० सुखलालजी संघवी बम्बई आये । वे तब बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में जैन दर्शन के प्राध्यापक थे । मुझे बनारस ले गये । पूज्य पण्डितजी के चरणों में रहने का सौभाग्य मिला । बनारस में मैंने २५ वर्ष कार्य किया । जैन दर्शन पढ़ाया, बौद्ध दर्शन भी पढ़ाया । फिर मैं स्व० सेठ कस्तूरभाई के विशेष आग्रह से यहाँ अहमदाबाद आ गया । यहाँ भी मुझे आये २५ वर्ष हो गये । बनारस में जैन कल्चरल रिसर्च सोसायटी नामक संस्था की स्थापना करवाई । संक्षिप्त आकार-प्रकार में कई पुस्तकें भी वहाँ से प्रकाशित कीं । यहाँ एल० डी० इन्स्टीट्यूट से लगभग ९८ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं ।

इधर आने के बाद टोरेन्टो (कनाडा) में पढ़ाने हेतु जाने का प्रसंग

बना। सेठ श्री कस्तूरभाई का कथन था, वहाँ मैं छः महीनों से अधिक न रहूँ। पर मैंने कहा कि जा ही रहा हूँ तो कम से कम डेढ़ वर्ष तो रहूँगा ही। डेढ़ वर्ष पूरा होने के बाद मैं वहाँ से वापस लौट आया। वहाँ मुझे १७००० डालर मिलते थे। उसे छोड़कर मैं यहाँ १२५० रु. के मासिक वेतन पर आ गया। अमेरिका में पेंशन की विशेष व्यवस्था है। वहाँ वेतन में से प्रोविडेन्ट फण्ड नहीं कटता, पेंशन फण्ड कटता है। मैंने वहाँ डेढ़ वर्ष काम लिया। ७१ डालर प्रति मास मुझे पेंशन मिलती है। मेरे कहने का आशय यह है, यहाँ एल० डी० इन्स्टीट्यूट का भारतीय विद्या के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण कार्य है, उससे मेरा लगाव था, स्व० पूज्य मुनिश्री पुण्यविजयजी म० आगमों के कार्यों में संलग्न थे, मैं उनका सहयोगी था, अब तक आगमों के क्रिटिकल एडिशन नहीं निकले थे, मुनि श्री पुण्यविजयजी म० का ही क्रिटिकल एडिशन तैयार करने का यह प्रथम प्रयास था, अतएव मैंने यह आवश्यक समझा कि इन कार्यों में मैं अपनी सेवा दूं। प्रारम्भ से अब तक मेरा मुख्य कार्य जैन वाङ्मय की, जैन साहित्य की सेवा करना ही रहा। इसके अतिरिक्त और कुछ किया ही नहीं। जैन संस्थानों के सहयोग से मैं अपने शिक्षण में आगे बढ़ा। इसलिए मैं मुख्यतः अपने पर जैन समाज का ऋण मानता रहा हूँ। अतएव जैन धर्म तथा जैन साहित्य की सेवा की ओर मेरा प्रारम्भ से ही लगाव रहा।

मैंने आदरणीय मालवणिया सा० से बीच में ही निवेदन किया, हमारा तो यह छोटा सा पौधा है। इसे आप जैसे वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध महान् पुरुषों के आशीर्वाद और सम्बल की आवश्यकता है।

श्री मालवणियाजी बोले—छोटा है, लेकिन बड़ा हो सकता है। आप लोगों ने जो कार्य शुरू किया है, उसे मैं महत्त्वपूर्ण मानता हूँ। आपका कार्य ऊँचे इन्टेलेक्च्वल्स के बीच है। मद्रास तथा कलकत्ता भारत के इन्टेलेक्च्वल्स के मुख्य केन्द्र हैं।

जैन संस्कृति के मूर्त प्रतीक :

मैंने पुनः बीच में निवेदन किया, हमारे रिसर्च फाउण्डेशन के चेयरमेन पुलिस कमिश्नर श्री श्रीपालजी हैं, जो दिगम्बर जैन हैं। बड़े उदार विचारों के हैं, जैन संस्कृति और जैन विद्या के विकास में उनको बहुत अभिरुचि है, प्रबुद्ध चिन्तक हैं। अपने धीर, गम्भीर एवं शालीन व्यक्तित्व से वे जैन संस्कृति के मूर्त्त प्रतीक प्रतीत होते हैं। वे चाहते हैं, यह विभाग जैन विद्या का प्रमुख केन्द्र बने।

इसी बीच डॉ. छगनलालजी शास्त्री ने कहा, मैं मद्रास में श्रीयुत श्रीपालजी से मिला। जैन विद्या के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा हुई। उन्होंने कतिपय गहन तात्त्विक विषय भी प्रस्तुत किये, जिन पर विचार-विमर्श हुआ। उन्होंने बड़े भावपूर्ण शब्दों में कहा—प्राचीन काल में विद्याध्ययन हेतु विदेशों से लोग भारत में आते, वे पूछते—हम भारतीय विद्याओं के अध्ययन के लिए कहाँ जायें ? लोग उन्हें कहते—आप नालन्दा जायें, तक्षशिला जायें आदि। मैं चाहता हूँ, मेरी भावना है, मद्रास जैन विद्या की विविध शाखाओं के अध्ययन, अनुसंधान का इतना विशाल केन्द्र बन जाये कि विदेशों से जो शिक्षार्थी, शोधार्थी, जिज्ञासु, भारत आयें और पूछें कि हमें जैन विद्या का अध्ययन करना है, उस पर अनुसंधान कार्य करना है, कहां जाएँ ? लोग उन्हें बतलायें, आप मद्रास जायें।

मैं एक उच्च पुलिस अधिकारी के मुँह से यह सुनकर भावविभोर हो गया।

उज्ज्वल भविष्य :

श्री दलसुखभाई मालवणिया बोले—मुझे आशा है, पाँच वर्ष के बाद अवश्य ऐसा होगा। मद्रास के लोग, दक्षिण के लोग मेधावी हैं, श्रमशील हैं, अवसर प्राप्त होने पर वे इस कार्य में जरूर लगेंगे और बड़ा काम कर सकेंगे। ऐसे कार्य में समाज के सभी लोगों का सहयोग मिले, यह आवश्यक है। दक्षिण में हिन्दू धर्म पर शोध सम्बन्धी बहुत कार्य हुआ है। जैन धर्म के क्षेत्र में उधर कार्य नहीं हो सका। आप लोगों का इस सन्दर्भ में यह बड़ा सुन्दर प्रयत्न है। आपका भविष्य उज्ज्वल है।

मैंने बहुत विनयपूर्वक कहा—आप लोगों के आशीर्वाद से हम आगे बढ़ेंगे, हमें ऐसी आशा है। समाज का सहयोग प्राप्त हुआ है। अधिकाधिक प्राप्त हो, इस दिशा में हम प्रयास करेंगे।

श्री दलसुखभाई बोले—आप लगन से कार्य कर रहे हैं। इस महत्व-पूर्ण कार्य का श्रेय आपको मिलेगा।

मैंने जैनोलॉजी के कार्य की ओर संकेत करते हुए कहा कि सुप्रसिद्ध विद्वान डॉ. छगनलालजी शास्त्री का हमें प्रारम्भ से ही मार्ग-दर्शन प्राप्त है। हमारी यह यात्रा भी उन्हीं द्वारा दी गयी प्रेरणा का परिणाम है, जिसके अन्तर्गत हमको आप जैसे महान् पुरुषों के सम्पर्क में आने का तथा मार्ग-दर्शन लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

श्री दलसुखभाई ने बड़ी प्रसन्नता के साथ कहा—आपको इतने

योग्य व्यक्ति प्राप्त हो गये हैं, बहुत अच्छा हुआ है। आपको इसमें खुशी माननी चाहिए। ज्यों-ज्यों आपका कार्य गति पकड़ेगा, उसकी प्रतिष्ठा बढ़ेगी और वहाँ से लाभान्वित होने हेतु बाहर से भी लोग आयेंगे। हमारे यहाँ भी जर्मनी, अमेरिका, इंग्लैण्ड आदि देशों से अध्ययनार्थी, शोधार्थी आते रहते हैं। वे जानते हैं कि मालवणिया वहाँ हैं। टोरेन्टो जाने की जो बात मैंने कही, वह भी एक ऐसा ही प्रसंग है। मैं यहाँ था। मुझे टोरेन्टो बुलाने का बनारस पत्र गया। वह पत्र बनारस से यहाँ आया। मेरे साथ कुछ ऐसा ही रहा है, मुझे कभी नौकरी के पीछे नहीं जाना पड़ा। नौकरी के लिए दरख्वास्त देने का भी अब तक प्रसंग नहीं बना।

आदर्श अपरिग्रही :

इस अवसर पर अपने गुरुवर्य श्रद्धेय पं० सुखलालजी की एक बात मैं आपसे कहूँगा। मैं उनके पास बम्बई से बनारस गया। विश्वविद्यालय में तो मेरी नौकरी बाद में हुई। मैं तो उन्हीं की नौकरी में गया। हिन्दू विश्वविद्यालय में वह जैन चेयर, जिस पर पूज्य पण्डितजी कार्य करते थे, जैन कान्फ्रेन्स की थी। पण्डितजी को उस समय विश्वविद्यालय की ओर से १५० रुपये मिलते थे। पण्डितजी प्रज्ञाचक्षु थे। अपने साहित्यिक कार्य में सहयोग हेतु उन्हें एक सहयोगी रखना होता था। इसलिए १५० रु० मासिक कान्फ्रेन्स उन्हें बम्बई से भेजती थी। मेरे बनारस जाने पर तो पण्डितजी का खर्चा कुछ बढ़ा ही। उन्होंने बनारस से कान्फ्रेन्स को जो पहला पत्र मुझसे लिखवाया, वह सदा स्मरणीय रहेगा। उसका मेरे मन पर जो प्रभाव पड़ा, उसने मुझे सदैव प्रेरित किया। उन्होंने कान्फ्रेन्स को लिखवाया कि विश्वविद्यालय मुझे जो १५० रु० मासिक देता है, उससे मेरा सब कार्य ठीक चलता है। अब से आप वह १५० रु० मुझे न भेजें, जो प्रतिमाह भेजते हैं। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। पण्डितजी की महानता और निष्परिग्रही वृत्ति देख मेरा मस्तक श्रद्धा से झुक गया।

ऐसे महापुरुष का सम्पर्क मुझे मिला, इसे मैं अपना परम सौभाग्य कहूँगा। पण्डितजी की अपरिग्रह-वृत्ति का मेरे मन पर सदा प्रभाव रहा। पैसे के पीछे मैं कभी नहीं दौड़ा और मेरे कभी किसी प्रकार कमी भी नहीं रही। अनाथाश्रम में था, तब से मैं तीन रोटी खाता था। अब तो खुराक और भी कुछ कम हो गई है। उस समय भी तीन से जो अधिक रोटियाँ मिलतीं, मैं अपने पड़ोसी को देता रहता। कहने का तात्पर्य यह है—अपनी आवश्यकता की दृष्टि से मुझे सदैव वह सब यथेष्ट प्राप्त रहा, जो अपेक्षित था।

मुझे विभिन्न धर्मों के संस्कार प्राप्त रहे हैं, पर मेरा कार्य-क्षेत्र जैन धर्म एवं जैन साहित्य रहा है। जैसा बना उस दिशा में कार्य करता रहा हूँ।

आपके कार्य के प्रति मेरी शुभकामनाएँ हैं। वह आगे बढ़ता जाए, मेरी यही भावना है।

हम सभी विद्वत्सम्पर्क से बहुत प्रभावित हुए। डॉ० अमरचन्दजी को आवश्यक कार्यवश मद्रास वापस लौटना पड़ा। उनकी इच्छा थी, वे आगे भी यात्रा में रहें किन्तु विश्वविद्यालय में उनके विभाग में विद्यार्थियों के नव प्रवेश आदि के अति आवश्यक कार्य थे, जिनमें उनकी उपस्थिति अनिवार्य थी।

यात्रा के बढ़ते चरण :

अहमदाबाद से हम—डॉ. शास्त्रीजी, डॉ. सी. बालसुब्रह्मण्यन्‌जी, मैं एवं शर्माजी सीधे साबरमती एक्सप्रेस द्वारा जबलपुर के लिए रवाना हुए। हमने सोचा था, साबरमती एक्सप्रेस जबलपुर जाती है किन्तु प्रातःकाल हम उज्जैन पहुँचे तो हमें रेलवे अधिकारियों ने बताया, यहाँ गाड़ी बदलनी होगी। सायंकाल दूसरी गाड़ी से जाना होगा। वैसे उज्जैन हमारे यात्राक्रम में था, किन्तु हम अभी उज्जैन छोड़ते हुए सीधे जबलपुर होकर वाराणसी जाना चाहते थे। जब उज्जैन में रुकने की स्थिति बन ही गई तो हमने उचित समझा कि यहाँ पर भी जिन-जिन विद्वानों से भेंट करनी है, विचार-विमर्श करना है, अवश्य कर लें। हम लोग रेलवे रिटायरिंग रूम में रुके।

दृढ़ संकल्प :

मेरी तबीअत, जब हम मद्रास से रवाना हुए, तभी से कुछ कमजोर थी। अहमदाबाद में भी तबीअत भारी रही। डाक्टर से दवा ली। उज्जैन पहुँचते ही मुझे बहुत तेज बुखार हो गया। मैं बहुत अस्वस्थ हो गया। यहाँ विक्रम विश्वविद्यालय के अन्तर्गत माधव कालेज में दर्शन विभाग के अध्यक्ष डॉ. बी. बी. रायनाडे तथा प्रमुख समाजसेवी, साहित्य-सेवी पं. सत्यन्धरकुमारजी सेठी से भेंट करने का कार्यक्रम था। उज्जैन हमारे लिए नया स्थान था। मेरी अस्वस्थता से डॉ. सी. बालसुब्रह्मण्यन्‌जी तथा डॉ. शास्त्रीजी बहुत चिन्तित हुए।

डॉ. शास्त्रीजी स्वयं मेरे पास रहे। उन्होंने डॉ. सी. बालसुब्रह्मण्यन्‌जी को तथा श्री बी. एम. शर्माजी को श्री रायनाडे साहब तथा श्री सेठीजी

के यहाँ भेजा। संयोग ऐसा बना, दोनों ही नहीं मिले पर डॉ. सी. बालसुब्रह्मण्यन्जी एवं शर्माजी वहाँ हमारे आने के सम्बन्ध में संदेश छोड़ आये थे, इसलिए कुछ ही देर बाद पं० सत्यन्धरकुमारजी सेठी हमारे पास स्टेशन पहुँच गये। श्री सेठीजी, डॉ. शास्त्रीजी के घनिष्ठ मित्रों में से हैं और उज्जैन में लगभग चार महीने वे उनके साथ रहे हैं। श्री सेठीजी ने मेरी चिकित्सा में एक आत्मीयजन की ज्यों हार्दिक अभिरुचि ली। तत्काल उन्होंने नगर के बड़े डाक्टर को बुलाया। निदान करवाया और मुझे क्लिनिक में दाखिल करवाया। श्री सेठीजी एक विद्वान तो हैं ही, साथ ही साथ वे एक क्रान्तिकारी चिन्तक और सेवाभावी पुरुष हैं। क्लिनिक में दिन में अनेक बार वे मुझे देखने आये, सब व्यवस्थाएँ कीं। श्री रायनाडे जी भी आते रहे। उनका भी बड़ा सहयोग व सौजन्य रहा।

डॉ. शास्त्रीजी तथा डॉ. सी. बालसुब्रह्मण्यनजी मेरी अस्वस्थता से चिन्तित थे। उन्होंने मेरे समक्ष यह प्रस्ताव रखा कि अस्वस्थता में आगे यात्रा कैसे करेंगे। अच्छा हो, वापस मद्रास लौट चलें, क्योंकि आपके स्वास्थ्य को हमें सबसे पहले देखना है, उसके बाद और कार्य। मैंने उनसे विनम्र निवेदन किया, कृपया ऐसा मत कीजिये। चिकित्सा से मुझे लाभ है। आपके आशीर्वाद से मैं शीघ्र ही स्वस्थ हो जाऊँगा। यदि यात्रा को हम लोग स्थगित कर देंगे तो भविष्य में फिर वैसा कार्यक्रम शीघ्र ही बन पाये, सम्भव नहीं लगता। इसमें अनेक कठिनाइयाँ होंगीं। इसलिए हमें यात्रा उत्तरोतर गतिशील रखनी है, किसी भी स्थिति में स्थगित नहीं करनी है।

शुभ संयोग था, दूसरे दिन अपराह्न तक मैं बिल्कुल स्वस्थ हो गया, यात्रा करने योग्य हो गया।

विद्वानों द्वारा शुभाशंसा :

डॉ. श्री रायनाडे सा. तथा पं. सत्यन्धरकुमारजी से मद्रास विश्वविद्यालय में नवस्थापित जैन विद्या विभाग के सन्दर्भ में काफी विचार-विमर्श हुआ। उन्होंने इस कार्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की। जैन विद्या के क्षेत्र में इसे एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कदम बताया।

श्रीमान् सत्यन्धरकुमारजी सेठी ने हमें प्रेरणा देते हुए कहा—आपने जो कार्य उठाया है, वह वास्तव में महान् कार्य है। भगवान महावीर के विश्वकल्याणकारी सिद्धांतों का गहराई से सूक्ष्मतापूर्वक अध्ययन हो, यह

आज के युग में बहुत ही आवश्यक है। आप लोग यात्रा के कष्ट और असुविधाएँ झेलते हुए जिस उत्साह के साथ कार्य को गति देने में प्रयत्न-शील हैं, वह वास्तव में प्रशंसनीय है। यह समग्र जैन समाज का, जैन संस्कृति में अनुराग रखने वाले पुरुषों का कार्य है।

मैंने पण्डितजी से निवेदित किया कि ऐसे कार्यों में—हमारे सांस्कृतिक अभ्युदय में, ज्ञान-प्रसार में सब जैनों को बिना किसी भेद-भाव के अपनी पूरी शक्ति लगानी चाहिए। ऐसा होने से ही काम का उत्कृष्ट फल हमें प्राप्त होगा।

पण्डितजी बोले—आपका चिन्तन बहुत ठीक है। ऐसा होना ही चाहिए। सम्यक्ज्ञान के प्रचार-प्रसार से बढ़कर और उत्तम कार्य जगत् में है ही क्या। हम आपके इस कार्य में जहाँ भी आवश्यकता होगी, सदा आपके सहयोगी रहेंगे।

मैंने पण्डितजी से अनुरोध किया—आपके चिन्तन में क्रांति के स्फुलिंग हैं, आपके विचारों में उदारता है, आपसे हम लोगों को प्रेरणायें प्राप्त हों, इस हेतु आपको जब भी हम दक्षिण में आमन्त्रित करें, आप अवश्य पधारें।

पण्डितजी ने स्वीकृति प्रदान करते हुए कहा कि आपने जो कार्य ले रखा है, वैसे कार्य जीवन में मेरे लिये सर्वोपरि हैं। जब भी अपेक्षित होगा, मैं आपके यहाँ आऊँगा। डॉ. रायनाडे जी ने भी अपने हार्दिक सक्रिय सहयोग का भाव व्यक्त किया।

दुर्घटना : गति : प्रगति :

उज्जैन से प्रस्थान कर हम सीधे वाराणसी पहुँचे। वाराणसी में हम अपने कार्य में संलग्न हों, इससे पूर्व दो दुर्घटनायें हो गईं। डॉ. शास्त्री जी के पैर रपट जाने से बाँयें घुटने में चोट लग गई। प्रौढ़ावस्था में भी वे बड़े साहसी, परिश्रमी तथा धैर्यशील हैं। वे अपनी चोट की चर्चा करना नहीं चाहते थे किन्तु चोट इतनी अधिक थी, चलना दुःशक्य हो गया। हमें मालूम हुआ, बड़ी चिन्ता हुई। डाक्टर को बताने हेतु हम चारों सदस्य दो साइकिल रिक्शों द्वारा होटल से रवाना हुए। डॉ. शास्त्री जी और मैं एक रिक्शा में बैठे थे तथा डॉ. सी. बालसुब्रह्मण्यन् जी एवं शर्माजी दूसरे रिक्शा में बैठे थे। हम होटल से रवाना ही हुए थे कि बहुत तेजी से आते एक स्कूटर ने हमारे रिक्शे के टक्कर मार दी। रिक्शा लड़खड़ा गया। मेरे बाँये घुटने में चोट लगी। संयोग ऐसा हुआ, मेरे भी उसी पैर में, उसी घुटने में, उसी जगह चोट लगी, जहाँ डॉ. शास्त्रीजी के

लगी थी। हम दोनों को भारी पीड़ा थी। डाक्टर के यहाँ हम गये। औषध-विक्रेताओं की वाराणसी में तीन दिन की हड़ताल थी, औषधि नहीं मिल सकी। होटल में वापस आकर तेल मालिश करने वाले एक नाई को बुलाया। सायंकाल तक कोई आराम नहीं मिला।

डॉ. शास्त्रीजी अध्ययनार्थ वाराणसी में काफी रहे हैं। उनका वहाँ बहुत परिचय है। उन्होंने श्री बी. एम. शर्मा को सारी बात समझाते हुए श्री रामानन्द संस्कृत महाविद्यालय, कर्णघण्टा भेजा, ताकि वहाँ के लोग चिकित्सा व्यवस्था में हमें मदद कर सकें। महाविद्यालय के अधिष्ठाता महन्त श्री ईश्वरदास जी होटल में आये। उन्होंने अच्छे डाक्टर की खोज की, हमें उनके यहाँ जाने हेतु मार्गदर्शन दिया। हम लोग अगले दिन प्रातःकाल डाक्टर के यहाँ जाने को थे, किन्तु डॉ. सी. बालसुब्रह्मण्यन्जी ने कहा—प्रातःकाल के बजाय अभी चिकित्सा लीजिए। तदनुसार हमने वाराणसी के सुप्रसिद्ध डाक्टर उमेशचन्द्र गुप्ता बी. एस.-सी., एम. बी. बी. एस., एफ. आर. सी. एस. प्रधान चिकित्सक मारवाड़ी हिन्दू अस्पताल, वाराणसी से चिकित्सा ली। शुभ संयोग था, प्रातःकाल तक हम काफी ठीक हो गये। हम आवश्यक कार्यों से निवृत्त होकर वाराणसी में डॉ. सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय गये।

संस्कृत विश्वविद्यालय

डॉ. सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय भारतवर्ष में शास्त्रीय पद्धति से संस्कृत के अध्ययन का सबसे बड़ा केन्द्र है। इसकी स्थापना क्वींस कालेज या गवर्नमेंट कालिज के रूप में अंग्रेजों के समय में हुई थी। देश के स्वतन्त्र हो जाने के पश्चात् उसका वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय के रूप में नामान्तरण हुआ, विकास हुआ। आगे चलकर देश के महान् संस्कृत विद्वान सम्पूर्णानन्दजी, जो उत्तर-प्रदेश के मुख्यमन्त्री रहे, राजस्थान के राज्यपाल भी रहे, के नाम पर इसका नाम डॉ. सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय रखा गया। यहाँ अन्यान्य विभागों के साथ-साथ जैन दर्शन तथा प्राकृत का भी विभाग है।

जैन दर्शन विभाग के अध्यक्ष डॉ. फूलचन्दजी जैन आचार्य, एम. ए. पी-एच. डी. हैं। उनसे हमें भेंट करनी थी। संस्कृत विश्वविद्याजय में अवकाश था अतः उनके निवास स्थान पर हम उनसे मिले। वे एक युवा उत्साही विद्वान हैं। बहुत ही सहृदय, सौम्यचेता पुरुष हैं। संस्कृत विश्वविद्यालय में नियुक्ति लेने से पूर्व वे जैन विश्वभारती लाडनूं, ब्राह्मी महा-

विद्यालय में प्राध्यापक थे। डॉ. शास्त्रीजी के साथ उनका बहुत आदरपूर्ण स्नेहपूर्ण सम्बन्ध है। लाडनूं के अतिरिक्त वे अपने महाविद्यालय के कार्य के अन्तर्गत सरदारशहर आदि राजस्थान के अन्य नगरों में भी प्रवास कर चुके हैं।

डॉ. फूलचन्दजी डॉ. शास्त्रीजी के एवं मेरे दुर्घटनाग्रस्त हो जाने के विषय में सुनकर उपालम्भ के स्वर में बोले—आप दुर्घटनाग्रस्त हो गये, हम लोगों को सूचित तक नहीं किया, हमें आतिथ्य और सेवा का अवसर आपने नहीं दिया। यह उचित नहीं किया।

डॉ. फूलचन्दजी के सौहार्द से हम लोग बहुत प्रभावित हुए। उनको मद्रास विश्वविद्यालय के जैनोलॉजी डिपार्टमेन्ट के सम्बन्ध में सारी जानकारी कराई।

स्वतन्त्र विभाग की महत्ता:

डॉ० फूलचंदजी ने कहा—आप लोगों के प्रयास से मद्रास विश्वविद्यालय में जैन विद्या का स्वतंत्र विभाग स्थापित हुआ, यह बहुत प्रसन्नता का विषय है। इस समय जहाँ भी जैनोलॉजी के अध्ययन की व्यवस्था है, वहाँ अधिकांशतः विश्वविद्यालयों में जैन चेयर्स हैं, डिपार्टमेंट्स नहीं। पृथक् विभाग होने से कार्य में जो सुविधा और अनुकूलता रहती है, वह चेयर में नहीं रहती। जहाँ जैनोलॉजी की चेयर्स हैं, वहाँ के कार्य का आकलन करते हैं तो प्रतीत होता है, वहाँ जैसा, जितना चाहिए, कार्य नहीं हो सका है। संस्कृत आदि डिपार्टमेंट्स उनका लाभ ले लेते हैं। लाभ लें, कोई हानि नहीं लेकिन जैनोलॉजी का मूल कार्य तो आगे बढ़ना चाहिए, पर वैसा नहीं होता, यही चिंता की बात है। पृथक् विभाग होने से विश्वविद्यालय से सब अनुकूलताएँ एवं सुविधाएँ उसे स्वतंत्र रूप में प्राप्त रहेंगी, जो अन्य विभागों को हैं। यह आप लोगों ने बहुत ही सुन्दर कार्य करवाया।

देश में जैन दर्शन का अध्ययन-क्रम:

हमने संस्कृत विश्वविद्यालय में जैन दर्शन के अध्ययन के सम्बन्ध में उनसे जानकारी चाही तो उन्होंने बताया—कुछ समय पूर्व संस्कृत विश्वविद्यालय में जैन दर्शन तथा प्राकृत का एक ही संयुक्त विभाग था। अब दोनों विभाग पृथक्-पृथक् हैं। जैन दर्शन विभाग में मैं कार्य देखता हूँ तथा प्राकृत विभाग के अध्यक्ष डॉ० गोकुलचंदजी जैन हैं। हमारे दोनों ही विभागों में अध्ययन, अनुसंधान का अच्छा कार्य चल रहा है।

हमारे संस्कृत विश्वविद्यालय से सम्बद्ध विद्यालय, महाविद्यालय समग्र भारत में लगभग ३००० की संख्या में हैं, जहाँ हमारे विश्वविद्यालय का पाठ्यक्रम चलता है। इनमें में ३०० तो केवल वाराणसी क्षेत्र में ही हैं।

हमारे जैन दर्शन विभाग में जैन आगम, जैन तर्कशास्त्र, दर्शनशास्त्र, जैन योग आदि जैन विद्या से सम्बद्ध अनेक शाखाओं का अध्ययन होता है, उन पर शोध कार्य होता है।

भारत में विभिन्न स्थानों पर जैन शिक्षण-संस्थान हैं। शिक्षण का कार्य तो होता है किन्तु जब तक विश्वविद्यालय का पाठ्यक्रम नहीं लिया जाता, तब तक वहाँ की स्थानीय उपाधियों का शैक्षणिक क्षेत्र में कोई महत्व नहीं समझा जाता। हमारे यहाँ मध्य प्रदेश में २५-३० दिगम्बर जैन संस्कृत महाविद्यालय हैं, जो प्रायशः हमारे विश्वविद्यालय से सम्बद्ध हैं। वे विश्वविद्यालय का पाठ्यक्रम तैयार करवाते हैं, परीक्षाएँ दिलवाते हैं। साथ ही साथ जैन दर्शन का अतिरिक्त अध्ययन भी करवाते हैं। इस समय अधिकांश दिगम्बर जैन विद्वान् प्रायः मध्य प्रदेश के हो हैं। जबलपुर, सागर आदि में जो दिगम्बर जैन संस्कृत महाविद्यालय हैं, वहाँ संस्कृत-माध्यम से जैन दर्शन के अध्ययन के साथ-साथ बी. ए., एम. ए. की परीक्षाएँ भी दिलवायी जाती हैं।

अब से पूर्व मैं जैन विश्वभारती, लाडनूं में था। वहाँ अच्छी पढ़ाई चलती है किन्तु वे किसी विश्वविद्यालय से सम्बद्ध नहीं हैं। मैंने अनुरोध किया, वे किसी विश्वविद्यालय से सम्बद्ध होकर शिक्षण दें तो बहुत उत्तम हो। यहाँ आने के बाद मैंने उनको लिखा कि संस्कृत विश्वविद्यालय से सम्बद्ध हो जायें पर वे वैसा नहीं कर सके। इस सन्दर्भ में संकीर्णता नहीं होनी चाहिए।

विद्वानों की माँग :

मैंने डॉ. फूलचन्द जी से कहा कि आपके ध्यान में हो तो हमें कुछ उच्चकोटि के विद्वानों का पता दें, जिनका जैन दर्शन पर गहन अध्ययन हो।

उन्होंने कहा—शास्त्रीय दृष्टि से प्राचीन परम्परा के अच्छे विद्वान यद्यपि इस समय बहुत नहीं हैं किन्तु कुछ मिल सकते हैं। उदाहरणार्थ डॉ. उदयचन्द जी जैन, जिन्होंने अभी अवकाश ग्रहण किया है, बहुत अच्छे गम्भीर विद्वान हैं। नयी पीढ़ी के विद्वानों में भी कुछ ऐसे व्यक्ति हैं, पर

दक्षिण में उनके लिए भाषा की दिक्कत हो सकती है। वैसे अँग्रेजी जानते हैं किन्तु विश्वविद्यालय के दृष्टिकोण से उसमें विशेष प्रौढ़ता होनी चाहिए।

मैंने कहा—हमारा ऐसा प्रयास है—जैन विद्या विभाग में मद्रास विश्वविद्यालय में अंग्रेजी, तमिल तथा हिन्दी तीनों भाषायें रहें। जो जिस भाषा के माध्यम से अध्ययन एवं अनुसंधान करना चाहे, वह उसमें कर सके अतः हमें वहाँ तीनों ही भाषाओं के माध्यम से अध्ययन किये हुए विद्वानों की सेवाएँ अपेक्षित होंगी। तीनों भाषाएँ रहने से देश भर के विद्यार्थी अध्ययन कर सकेंगे। तमिल रहने से विशेषतः तमिलनाडु के शिक्षार्थियों तथा शोधार्थियों को यथेष्ट लाभ मिल सकेगा। यह विभाग तमिलनाडु में स्थापित हुआ है, अतः तमिलभाषियों को विशेष लाभ मिलना ही चाहिए।

जैन दर्शन पर सेमिनार :

आप जैनोलॉजी के सन्दर्भ में अपना और कोई सुझाव दीजिये, मैंने डॉ. फूलचन्द जी से अनुरोध किया। उन्होंने कहा—देशभर के प्रमुख जैन विद्वानों का आप मद्रास में एक सेमिनार आयोजित करें। वहाँ जैन विद्या के सन्दर्भ में चर्चाएँ हों, अध्ययन, अध्यापन तथा अनुसंधान के विषय में विचार-विमर्श हो, मद्रास विश्वविद्यालय में नवस्थापित जैन विद्या विभाग के अन्तर्गत परिकल्पित विभिन्न कार्यों पर चर्चा हो। इससे आपको अपने कार्य में नयी दिशाएँ प्राप्त होंगी। विद्वान भी आपकी निगाह में आ जायेंगे।

मैंने उनसे कहा—सेमिनार आयोजित करने का आपका सुझाव तो बहुत सुन्दर है, किन्तु हम विभाग के चालू हो जाने के पश्चात् सेमिनार आयोजित करना चाहते हैं। हमारा पहला कार्य विभाग को जमाना है, कार्यशील बनाना है।

डॉ. फूलचन्द जी—आप सेमिनार आदि आयोजित करें तो विभाग की दृष्टि से विद्वान भी आपके ध्यान में आ जायेंगे।

मैंने उनसे कहा—इसके लिए हमारा चिन्तन यह रहा कि विद्वानों से हम उनके स्थानों पर जाकर सम्पर्क करें। उनके यहाँ हो रहे कार्यों का परिचय प्राप्त करें, उनका मार्गदर्शन लें। निकट-सम्पर्क की दृष्टि से यह पद्धति हमें अधिक उपयोगी प्रतीत होती है। सेमिनारों में औपचारिकता अधिक रहती है। गोष्ठियों, सभाओं में व्यस्तता रहती है। जो निकटता

हम चाहते हैं, वह सध नहीं सकती। हाँ, उनका वैचारिक उद्‌बोध के नाते, शैक्षणिक, आनुसंधानिक योजनाएँ क्रियान्वित करने में पथ-प्रदर्शन प्राप्त करने की दृष्टि से लाभ है ही। इसलिए हम सेमिनार, विभाग का कार्य गतिशील हो जाने पर करना चाहते हैं।

डॉ० फूलचन्द जी—आपका यह विचार भी सुन्दर है। आप लोग जिस उत्साह, लगन एवं तत्परता से कार्य कर रहे हैं, उससे हमें आशा है, आपका कार्य बहुत प्रगति एवं उन्नति करेगा। एक बात का अवश्य ध्यान रखें, जैनोलॉजी के विभाग में जो भी व्यक्ति आयें, वे उदार भावनाओं के हों, उनमें साम्प्रदायिक संकीर्णता का भाव न हो। वे विभाग का, जैनोलॉजी का विकास करें, केवल अपने ही विकास में न लग जाएँ।

स्याद्वाद महाविद्यालय में विचार-विमर्श :

क्या आप सिद्धान्ताचार्य पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री से मिले ? डॉ० फूलचन्द जी ने पूछा।

हमने कहा—उनसे मिलना चाहते हैं। उनको अपने कार्यक्रम का पत्र भी हमारा भेजा हुआ है। आप भी हमारे साथ उनके यहाँ स्याद्वाद महाविद्यालय चलने का कष्ट करें।

वे बोले—इसमें कष्ट की कोई बात नहीं है। वह तो मेरा विद्या-स्थान है। आपके साथ चलने में मुझे बहुत हर्ष है।

डॉ० फूलचन्द जी के आवास-स्थान से चलकर हम लोग स्याद्वाद महाविद्यालय आये। यह वाराणसी के भदैनी नामक मोहल्ले में गंगा के तट पर अवस्थित है। सन् १९०५ में इसकी स्थापना हुई थी। आरा (विहार) के रईस श्री देवकुमार जी ने अपने पूज्य पितामह प० प्रभुदासजी द्वारा निर्मापित प्रभु-घाट भदैनी गंगा तट पर अवस्थित विशाल धर्मशाला इस विद्यालय के लिए तथा वहाँ पढ़ने वाले विद्यार्थियों के छात्रावास के उपयोग हेतु प्रदान की। इसके उन्नयन में परम प्रख्यात विद्वान तथा साधक स्व० श्री गणेशप्रसाद जी वर्णी का बहुत योगदान रहा। यहाँ से अनेक उच्चकोटि के विद्वान तैयार होकर निकले।

डॉ० फूलचन्द ने जी बताया कि देश में जितने दिगम्बर जैन विद्वान हैं, उनमें लगभग ९० प्रतिशत यहीं से निकले हैं।

पं० कैलाशचन्द्रजी शास्त्री स्याद्वाद महाविद्यालय के वर्षों तक प्राचार्य रहे। वे इस समय सर्वोच्च दिगम्बर जैन विद्वानों में हैं। उन्होंने जैन विद्या की बहुत सेवा की है। पच्चीस-तीस पुस्तकें भी उनकी प्रका-

शित हैं। इस समय वे वृद्ध हैं, फिर भी निरन्तर कार्यरत रहते हैं। उनका घर महाविद्यालय के समीप ही भदैनी में है। सूचना पाकर वे मिलने हेतु, महाविद्यालय में आये। बहुत ही सरल तथा भद्र प्रकृति के विद्वान हैं। उन्हें मद्रास विश्वविद्यालय में स्थापित जैन विद्या विभाग के सम्बन्ध में बताया। उन्होंने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। हमने निवेदन किया, कृपया आप इस कार्य के सम्बन्ध में हमें मार्गदर्शन दें।

पण्डितजी ने कहा—सबसे पहली बात विद्यार्थियों के मिलने की है। आजकल इस विषय को पढ़ने के उत्सुक छात्र बहुत कम मिलते हैं। उनका आजीविका का दृष्टिकोण रहता है। वे सोचते हैं, पढ़ने के बाद हमें अपनी उस पढ़ाई के आधार पर कहीं पोस्ट मिलेगी या नहीं। आज देश की स्थिति बहुत बदल गयी है। धार्मिकता मिटती जा रही है, भ्रष्टाचार बढ़ता जा रहा है।

हमने पण्डितजी से निवेदित किया—आजीविका एक बात है किन्तु विद्या पढ़ने का मूल लक्ष्य तो आत्मा का उत्थान है। उसी के लक्ष्य से प्राचीनकाल में लोग पढ़ते रहे हैं। आज वह लक्ष्य भी लुप्त होता जा रहा है।

पण्डितजी बोले—मैंने जैसा कहा, युग बदल गया है। आत्मविकास या जीवन-विकास के लिए पढ़ने का भाव आज मनुष्य में नहीं रहा है। वह अर्थप्रधान हो गया है। यह युग का प्रवाह है। आज हम लोग धार्मिक वृत्ति से बहुत कम अन्तःप्रेरित होते हैं।

जैन दर्शन के प्रभावक सिद्धान्त :

हमने पण्डितजी से जिज्ञासा की—इस समय जैन दर्शन के किन तथ्यों, सिद्धान्तों को विशेष रूप से जगत के समक्ष रखा जाये, जिससे वह प्रभावित हो, उसकी विशेषताएँ स्वीकार करे।

पण्डितजी ने कहा जैनदर्शन का कर्म-सिद्धान्त, अनेकान्तवादी दृष्टिकोण, अहिंसा का विराट् दर्शन, द्रव्य-गुण-पर्याय की चर्चा लोगों के समक्ष बौद्धिक स्तर पर प्रस्तुत की जाये, तो चिन्तनशील व्यक्ति इस ओर आकृष्ट हो सकते हैं। हमें ऐसी स्थिति उत्पन्न करनी चाहिए।

संस्कृत विश्वविद्यालय में एक सेमिनार हुआ था। श्रमण-संकृति की प्राचीनता के सम्बन्ध में मैंने उसमें एक लेख पढ़ा था। मैंने उसमें सप्रमाण यह सिद्ध करने का प्रयास किया था कि श्रमण-संस्कृति भी कोई कम प्राचीन नहीं है। गोष्ठी समाप्त होने पर अनेक विद्वानों ने मुझसे

कहा—हम तो अब तक वैदिक संस्कृति को ही प्राचीन मानते रहे थे, आपने श्रमण-संस्कृति को प्राचीन सिद्ध करने का जो प्रयास किया, उससे हमें नये तथ्य ज्ञात हुए। दिल्ली विश्वविद्यालय में भी श्री राजकृष्ण जैन स्मृति व्याख्यामाला के अन्तर्गत भारतीय धर्म और अहिंसा विषय पर मेरा भाषण था, जिसमें मैंने अहिंसा के सन्दभ में भारतीय धर्मों को लेकर विस्तार से व्याख्या की। वेदों में जो हिंसापरक विधान हैं, उनके सम्बन्ध में मैं विस्तार से उद्धरणों के साथ बताने लगा तो भारतीय ज्ञानपीठ के निदेशक श्री लक्ष्मीचन्द्रजी जैन ने मेरे पास आकर कहा कि आप यह सब क्या कहते हैं ? मैं अपने विषय पर सप्रमाण कहता गया। सभी चुप रहे, कोई कुछ नहीं बोला। यही सब बातें हैं, जो जैन धर्म की विशालता और व्यापकता को सिद्ध करती हैं। इन्हीं पर विशेष अध्ययन होना चाहिए, कार्य होना चाहिए। इससे बौद्धिक जनों पर अनुकूल प्रभाव पड़ेगा।

मैंने पण्डितजी से कहा—आप लोगों से हम यही समझना चाहते हैं। आपकी सेवा में आकर हमें बड़ी प्रसन्नता हुई, मार्गदर्शन मिला, भविष्य में भी चाहेंगे, आपका मार्गदर्शन मिलता रहे। आपका आशीर्वाद हमारे साथ रहे।

पण्डितजी ने कहा—आपका प्रयत्न अच्छा है, अवश्य सफल होगा।

वहाँ से रवाना होने से पूर्व डॉ. शास्त्रीजी ने पण्डितजी से जिज्ञासा की कि आपके यहाँ किन-किन विषयों में आचार्य तक का अध्ययन होता है ?

उन्होंने बताया—व्याकरण, साहित्य, जैन दर्शन तथा अन्य दर्शनों में आचार्य तक विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करते हैं।

उन्होंने फिर पूछा—आपके यहाँ कितने विद्यार्थी हैं ?

पण्डितजी ने बताया कि छात्रावास में निवास करने वाले २०-२५ विद्यार्थी हैं तथा अध्ययनार्थ आने वाले स्थानीय विद्यार्थी ६०-७० हैं। पहले विद्यार्थी अधिक थे, अब कम हो गये।

डॉ. शास्त्रीजी ने कहा—हम आपको जैन विद्या क्षेत्र में भीष्म पितामह के रूप में देखते हैं। आपने जैन धर्म, जैन दर्शन तथा जैन वाङ्-मय की जो सेवा की, वह वास्तव में प्रशंसनीय है। आपने अनेक विद्वान तैयार किये, जो देश में भिन्न-भिन्न स्थानों पर अच्छा कार्य कर रहे हैं।

हमारा यह शिष्ट मण्डल आपका सान्निध्य पाकर अपने को धन्य समझता है।

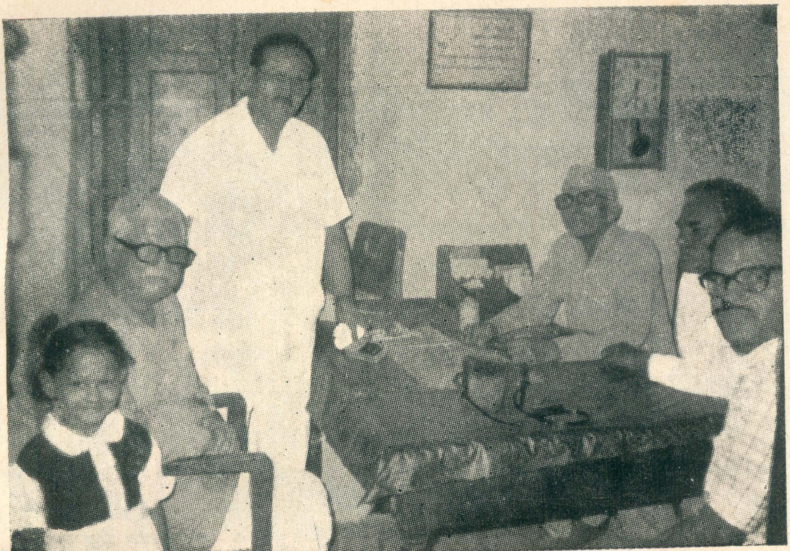

स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी में पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री बाईं ओर कुर्सी पर बैठे हुए जैन विद्या के सन्दर्भ में भावोद्गार प्रकट करते हुए खड़े हैं श्री एस० कृष्णचन्द चौरड़िया, बैठे हुए बाईं ओर से पहले डॉ० छगनलाल शास्त्री, दूसरे डॉ० सी० बालसुब्रह्मण्यन् तथा तीसरे डॉ० फूलचन्द्र जैन। (सन्दर्भ पृष्ठ ३७ पर)

वाराणसी में पी० वी० रिसर्च इन्स्टीट्यूट में इन्स्टीट्यूट के निदेशक डॉ० सागरमल जैन
वहाँ कार्यरत अन्य विद्वानों एवं अनुसन्धित्सुओं के साथ—

बांये से प्रथम—डॉ० सी० बालसुब्रह्मण्यन्, दूसरे—श्री एस० कृष्णचन्द चोरड़िया, तीसरे—डॉ० सागरमल जैन, चौथे—डॉ० छगनलाल शास्त्री, पीछे खड़े हुए इन्स्टीट्यूट में कार्यरत विद्वान तथा अनुसन्धातृवृन्द। सन्दर्भ देखिए पृष्ठ ३९ पर

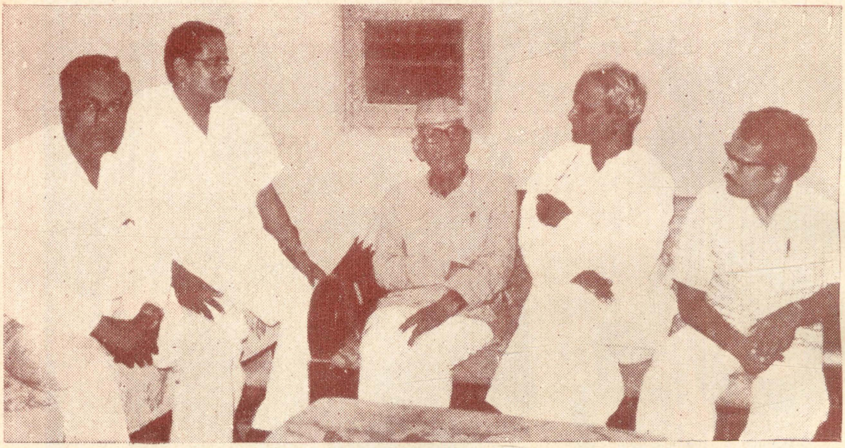

पी० वी० रिसर्च इन्स्टीट्यूट, वाराणसी में निदेशक डॉ० सागरमल जैन तथा डॉ० सम्पूर्णानन्द संस्कृतविश्वविद्यालय के जैनदर्शन विभागाध्यक्षडॉ० फूलचन्द जैन के साथ जैनोलॉजी के व्यापक पाठ्यक्रम एवं अनुसंधानपर चर्चा करते हुए—
बायें से प्रथम—डॉ० सी० बालसुब्रह्मण्यन्, क्रमशः श्री एस० कृष्णचन्द चोरड़िया, डॉ० छगनलाल शास्त्री, डॉ० सागरमल जैन, डॉ० फूलचन्द जैन। सन्दर्भ पृ० ४१ पर

वाराणसी में पी० वी० रिसर्च इन्स्टीट्यूट के विशाल ग्रन्थागार में डॉ० सागरमल जैन तथा अन्य विद्वानों के साथ जैन दर्शन के अध्ययन, अध्यापन, अनुसंधान एवं साहित्य-सर्जन पर चिन्तन एवं ऊहापोह करते हुए—
बायें से कुर्सी पर डॉ० सागरमल जैन, उनके बाईं ओर वहाँ के विद्वान् सामने दाहिनी ओर से प्रथम—डॉ० सी० बालसुब्रह्मण्यन्, श्री एस. कृष्णचन्द चोरड़िया एवं डॉ० छगनलाल शास्त्री। सन्दर्भ पढ़िए पृष्ठ ४२ पर

पार्श्वनाथ विद्याश्रम : जैन शोध संस्थान में

स्याद्वाद महाविद्यालय से हम लोग पार्श्वनाथ विद्याश्रम जैन शोध संस्थान पी. वी. रिसर्च इन्स्टीट्यूट आये, जो हिन्दू विश्वविद्यालय से सम्बद्ध है तथा विश्वविद्यालय के परिसर से संलग्न हैं। इसकी स्थापना ईसवी सन् १६३७ में श्री सोहनलाल जैन धर्म प्रचारक समिति, अमृतसर द्वारा हुई। पूज्य श्री सोहनलालजी म० सा० की पुण्य स्मृति में यह संस्था सन् १६३५ में परिगठित हुई थी। देश के महान् विद्वान प्रज्ञाचक्षु पं० सुखलालजी संघवी के निर्देशन तथा मार्गदर्शन में जैन विद्या के अध्ययन, अनुसंधान, विकास तथा प्रसार हेतु यह संस्था कार्यरत हुई है। वाराणसी भगवान पार्श्वनाथ की जन्मभूमि है अतः उन्हीं के नाम पर इस संस्था का नाम श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम रखा गया। यह संस्था उत्तरोत्तर प्रगति करती गई।

इसका अपना विशाल पुस्तकालय है। शोधकर्ता विद्वानों तथा संस्था में कार्यरत विद्वानों हेतु आवासीय सुव्यवस्था है। शोधकर्ताओं को छात्रवृत्तियां दिये जाने की भी व्यवस्था है। अब तक लगभग २५ शोधार्थियों ने यहाँ आवास कर, शोध कर जैन विद्या की विभिन्न शाखाओं में पी-एच. डी. प्राप्त की है। श्रीमान् डॉ० नथमलजी टाटिया एम. ए., डी. लिट्., डॉ. इन्द्रचन्द्रजी शास्त्री एम. ए., पी-एच.डी., डॉ० मोहनलाल जी मेहता एम. ए., पी-एच. डी. जैसे देश के गण्यमान्य विद्वानों ने यहीं रहकर अपना शोध-कार्य सम्पन्न किया, जो आज देश में जैनोलॉजी के क्षेत्र में प्रशंसनीय कार्य कर रहे हैं। लगभग ५० छोटे-बड़े ग्रंथ अब तक यहाँ से प्रकाशित हुए हैं। उनमें से अनेक शोधात्मक दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। लगभग ३५ वर्षों से यहाँ से श्रमण नामक मासिक पत्र निकल रहा है, जो अपनी अनुसन्धानमूलक ठोस सामग्री की दृष्टि से जैन पत्रकारिता के क्षेत्र में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान लिये हैं। इस संस्थान के निदेशक हिन्दू विश्वविद्यालय में दर्शन विभाग में एम. ए. के अध्यापन तथा सम्बद्ध विषयों में अनुसन्धान के निर्देशन के अधिकार प्राप्त हैं। डॉ० सागरमलजी जैन एम. ए., पी-एच. डी. इस समय इसके निदेशक हैं।

डॉ० सागरमलजी एक सुलझे हुए विद्वान् होने के साथ-साथ बहुत ही सूझबूझ के धनी हैं, बड़े सौम्य एवं सहृदय हैं। उनके निर्देशन में यह संस्थान अहर्निश प्रगति करता जा रहा है।

हम लोग डॉ० सागरमलजी के यहाँ शाम को पहुँचे। हमारा उनसे

मिलकर विचार-विमर्श कर रात को आगे आरा जाने का विचार था किन्तु उनका विशेष आग्रह रहा कि रात को हम वहीं रुकें, उनके साथ जैनोलॉजी के सन्दर्भ में विस्तृत चर्चा करें। उनका सुझाव तथा स्नेहपूर्ण आग्रह देखते हमने रात्रि प्रवास वहीं करना अनुकूल समझा। उनको मद्रास में जैनोलॉजी के विषय में हुए कार्य की, विभाग की स्थापना की जानकारी दी। वैसे पत्राचार द्वारा हम समय-समय पर उनसे विचारों का आदान-प्रदान करते ही रहे हैं। वे मद्रास का कार्य सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और कहा—जिस उत्साह से इस कार्य का प्रारम्भ आपने किया है, उससे भी दुगुने उत्साह से आप कार्य को सफल बनाने का प्रयास करें। दक्षिण में यह बहुत अच्छा कार्य होगा।

मैंने निवेदन किया—कृपया आप इस सम्बन्ध में अपने सुझावों से लाभान्वित कीजिये।

डॉ० जैन ने कहा—सबसे पहले आपको एक अच्छी लाइब्रेरी की स्थापना करनी होगी। जो भी व्यक्ति चेयर पर बैठेगा, बैठते ही उसे लाइब्रेरी की आवश्यकता होगी। उसके बिना एक मिनट भी काम नहीं चलेगा।

मैंने डॉ० जैन से कहा—इस दिशा में हम प्रयत्नशील होंगे। प्राचीन पाण्डुलिपियों का माइक्रो फिल्म भी करवायेंगे।

डॉ० जैन बोले—माइक्रो फिल्म आदि तो करवायेंगे ही, पहले आप जैन साहित्य पर, उसके विभिन्न अंगों पर प्रकाशित महत्वपूर्ण ग्रंथ संगृहीत करें। जैसे अभिधान राजेन्द्र कोष, जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, दूसरे कोश एवं रेफ्रेन्स बुक्स की तो विभाग खुलते ही आवश्यकता पड़ेगी।

दूसरी बात—प्रोपर पर्सन मिलने की है। उसके लिये समर्पित विद्वान् चाहिए, जो कार्य को अपने जीवन का विषय समझे। यथावत् रूप में वेतन प्राप्त होता रहे, केवल इतने ही चिन्तन का व्यक्ति न हो। एकेडमिकली कम हो तो चल सकता है, किन्तु वह डिवोटेड हो, निष्ठाशील हो, यह उससे भी कहीं अधिक आवश्यक है।

मैंने कहा—हम इस दिशा में प्रयत्नशील रहेंगे। आपके यहाँ जो शोध कार्य करने आते हैं, वे अधिकांशतः जैन होते हैं या जैनेतर ?

डॉ० जैन बोले हमारे यहाँ श्वेताम्बर, दिगम्बर तथा नौनजैन तीनों ही प्रकार के शोधार्थी आते हैं, किंतु आधिक्य अजैनों का रहा है। आने वाले जैन हों या अजैन हों, इस ओर हमें ध्यान नहीं देना है।

हमें तो इस ओर ध्यान देना है कि आने वाले जैन विद्या के प्रति कितने उत्साह और लगन से आते हैं।

पाठ्यक्रम पर विचार :

पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में चर्चा चलने पर उन्होंने बताया कि हमारे हिन्दू विश्वविद्यालय में जैनोलॉजी में एम. ए. नहीं है, एम. ए. फिलोसॉफी में अन्तिम वर्ष में दो पत्र जैन दर्शन के हैं। यदि डिसरटेशन जैन दर्शन सम्बन्धी विषय पर हो, तो तीन पेपर हो जाते हैं। आपके यहाँ पूरा जैनोलॉजी का स्वतंत्र विभाग स्थापित हुआ है, यह बहुत अच्छी बात है। पाठ्यक्रम तैयार करने के सन्दर्भ में आपको जैनोलॉजी का विषय जहाँ-जहाँ अंशतः, विकल्पतः या पूर्णतः पढ़ाया जाता है, वहाँ के पाठ्यक्रमों को देखना चाहिए। तदनुसार विश्वविद्यालय के स्तर के अनुरूप पाठ्यक्रम तैयार करने चाहिए।

डॉ० शास्त्रीजी ने इस पर कहा—हम लोगों ने ऐसे अनेक संस्थानों तथा विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम मंगा लिये हैं। उनका अध्ययन किया है। एम. फिल. के पाठ्यक्रम की रूपरेखा तैयार कर ली है। पी-एच. डी. के लिए कई रिसर्च प्रोजैक्टस तैयार किये हैं। एम. ए. का पाठ्यक्रम तैयार कर रहे हैं। एम. ए. से पूर्व सर्टिफिकेट कोर्स इन जैनोलॉजी, डिप्लोमा कोर्स इन जैनोलॉजी तथा हाइअर डिप्लोमा कोर्स इन जैनोलॉजी नामक तीन परीक्षायें और रखवाने का प्रयास कर रहे हैं, जिससे बड़े पैमाने पर छात्र-छात्राएँ जैनोलॉजी में आ सकें। प्रयास है, विश्वविद्यालय ऐसा प्रावधान रखे कि हाइअर डिप्लोमा, जो इन तीन परीक्षाओं में अन्तिम है, उत्तीर्ण कर लेने पर, जिसमें ४ वर्ष का समय लगेगा, जैनोलॉजी के एम. ए. में सीधा प्रवेश दिया जाय। इन सभी विषयों में आपको हमें पूरी मदद करनी है।

डॉ० सागरमलजी—यह तो विद्या का पवित्र कार्य है। हम लोगों से जैसा शक्य होगा, जैनालॉजी से सम्बद्ध प्रत्येक कार्य में आपके साथ होंगे।

विद्वान् दुर्लभ :

मैंने डॉ० सागरमलजी से कहा—अब हमें आवश्यकता इस बात की है कि आप जैसे अनुभवी विद्वान् वहाँ आकर बैठें।

डॉ० सागरमलजी ने बहुत ही निराशा के स्वर में कहा कि मैं वहाँ चला जाऊँगा तो यहाँ का काम चौपट हो जाएगा। डॉ भागचंदजी

नागपुर से जयपुर आ गये तो लगता है, नागपुर में पालि प्राकृत का काम चौपट हो जाएगा। आज देश में अध्ययनशील, निष्ठाशील, कार्यशील विद्वान् कहाँ हैं। आप लोग विद्वान तैयार कीजिये।

जैन विद्या में शोध की विपुल संभावनाएं :

जैन साहित्य व शोध का प्रसंग चलने पर डॉ० सागरमलजी ने कहा—यह क्षेत्र ऐसा पड़ा है, जिसमें बहुत अधिक कार्य करने की आवश्यकता है। अब तक केवल १० प्रतिशत जैन साहित्य ही बाहर आया है, ६० प्रतिशत साहित्य तो भण्डारों में बंद पड़ा है। उसे हमें बाहर लाना होगा। अनेक शोधकर्ताओं को उस कार्य में लगाया जा सकता है। जैन समाज को चाहिए कि इस काम को सबसे अधिक महत्व दे।

दूसरे दिन प्रातःकाल हमने पार्श्वनाथ विद्याश्रम के विशाल पुस्तकालय का अवलोकन किया। पुस्तकालय बहुत सुन्दर एवं व्यवस्थित है। पुस्तकों की संख्या की दृष्टि से ही नहीं किंतु उपयोगी चुनिन्दा पुस्तकों की दृष्टि से वह पुस्तकालय अत्यन्त समृद्ध है। जैन विद्या पर कार्य करने वालों को वहाँ पर अच्छी सामग्री उपलब्ध हो सकती है।

इस संस्था में कार्यरत रिसर्च एसोसिएट डॉ० विजयकुमार जैन एम. ए., पी-एच. डी., रिसर्च असिस्टेन्ट डॉ० अरुणप्रतापसिंह एम. ए., पी-एच. डी., लाइब्रेरी असिस्टेन्ट डॉ० मंगलप्रकाश मेहता एम. ए., पी-एच. डी., रिसर्च स्कॉलर श्री अशोककुमार एम. ए. तथा रिसर्च स्कॉलर जितेन्द्रबाबूलाल शाह एम. ए. से भी हमने वार्तालाप किया। उत्साही हैं, कार्यशील हैं।

विद्याश्रम का वातावरण हमें बहुत प्रेरक लगा। वह सर्वथा विद्या-मय प्रतीत हुआ। हमें यह देखकर प्रसन्नता हुई कि श्री योगेशमुनि नामक एक स्थानकवासी संत शोध कार्य में वहाँ संलग्न हैं, दो श्वेताम्बर मूर्ति-पूजक खरतर गच्छ के संत भी अध्ययनार्थ वहाँ रह रहे हैं। उनमें से एक देश के लब्ध प्रतिष्ठ जैन साहित्यसेवी स्व० श्री अगरचन्दजी नाहटा, बीकानेर के भागिनेय हैं।

डॉ० सागरमलजी से हमें जो आत्मीयता और माधुर्यपूर्ण आतिथ्य प्राप्त हुआ, वह सदा स्मरणीय रहेगा।

काशीपीठ के परम पूज्य जगद्गुरु शंकराचार्य की सेवा में :

जैसा कि ऊपर उल्लेख हुआ है, रात्रि को हमने विद्याश्रम में ही विश्राम किया। रात्रि से पूर्व सायंकाल डॉ० शास्त्रीजी की प्रेरणा से

वैदिक दर्शन के देश के मूर्धन्य मनीषी, काशीपीठ के जगद्गुरु शंकराचाय परम पूज्य स्वामी श्री शंकरानन्दजी सरस्वती के दर्शन हेतु हम गये। वे दुर्गाकुण्ड एरिया में स्थित धर्म संघ में टिके हुए थे। उस समय वे भवन की दूसरी मंजिल में पूजा-उपासना में निरत थे। हम लोग पहली मंजिल पर गये। मेरे तथा डॉ० शास्त्रीजी के बायें पैर में दुर्घटनाग्रस्त हो जाने के कारण पीड़ा थी। दूसरी मंजिल पर चढ़ सकने का हमें साहस नहीं हुआ। हमने उनकी सेवा में अपनी स्थिति निवेदित करवायी। वे नीचे पधारे। हमें दर्शन दिये। परम पूज्य जगद्गुरुवर्य और डा० शास्त्रीजी के बीच संस्कृत में बड़ा वैदुष्यपूर्ण, रोचक वार्तालाप हुआ। विशेष संस्कृतज्ञ न होते हुए भी वार्ताक्रम में भावभंगी से आशय आकलित कर मैं तथा डा० बाल-सुब्रह्मण्यन् जी बहुत प्रसन्न हुए। डा० शास्त्री जी पर जगद्गुरुवर्य का बड़ा अनुग्रह और स्नेह है। पूज्य शंकराचार्य जी म० ने कुछ वर्ष पूर्व सरदार शहर (राजस्थान) में अपना चातुर्मास्य किया था, तब शास्त्रीजी उनके सम्पर्क में काफी आते रहे। मैंने जगद्गुरुवर्य के श्रीचरणों में जैनोलॉजी के सम्बन्ध में हुआ कार्य निवेदित किया। उन्होंने प्रसन्नता व्यक्त की और अपना आशीर्वाद प्रदान किया। डॉ० शास्त्री जी से उन्होंने कहा कि अब तो आप लोग अपने आगे के कार्यक्रम के अनुसार यहाँ से जा रहे हैं। इनको (मुझे) फिर कभी लाइयेगा। सौम्य व्यक्ति हैं, अच्छे भावनाशील, उद्यम-शील पुरुष हैं।

मुझे तथा डा० सी० बालसुब्रह्मण्यन् जी को जगद्गुरुवर्य के दर्शन तथा सान्निध्य लाभ से बड़ा हर्ष हुआ है।

सारनाथ का तिब्बती उच्च शिक्षा संस्थान :

दिनांक २९-७-८४ को हम सारनाथ गये। वहाँ जैन समाज तथा सर्वोदय के प्रबुद्ध उत्साही कार्यकर्ता एवं सुयोग्य विद्वान श्री जमनालालजी जैन से मिले। वे डॉ० शास्त्रीजी के घनिष्ठ मित्रों में हैं। वे हमारे कार्य के सम्बन्ध में जानकर बहुत ही प्रसन्न हुए। सर्व सेवा संघ में वे प्रकाशन विभाग में विशेष उत्तरदायित्वपूर्ण पद पर कार्य करते रहे हैं। उनको प्रकाशन का बहुत अच्छा अनुभव है। जैन साहित्य में विशेष कार्य करने की अभिरुचि होने के साथ-साथ उनकी बहुत अच्छी गति है। बड़े ही ठोस, कर्मठ व निःस्वार्थ समाजसेवी, साहित्यकार हैं।

सारनाथ बौद्धों का एक पवित्र तीर्थ-स्थान है। भगवान बुद्ध ने यहाँ अपनी धर्म देशना दी थी। यहाँ केन्द्रीय तिब्बती उच्च शिक्षा संस्थान

है। वह विशेषतः तिब्बत से आये शरणार्थी तिब्बती छात्रों के लिए है जो बौद्ध दर्शन तथा तत्सम्बद्ध अन्य विषयों का अध्ययन करना चाहते हैं। यह संस्थान आवासीय है। लगभग २०० विद्यार्थी यहाँ रहते हैं। यहाँ पालि, संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी एवं बौद्ध दर्शन का अध्ययन कराया जाता है। यह संस्थान डॉ० सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी से सम्बद्ध है। यहाँ बौद्ध दर्शन में आचार्य तक का अध्ययन होता है। यहाँ से जो छात्र स्नातक होकर निकलते हैं, वे भिन्न-भिन्न देशों में बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार में अपनी सेवाएँ देते हैं। केन्द्रीय सरकार के शिक्षा संस्कृति मन्त्रालय द्वारा इसे अनुदान प्राप्त होता है, जिससे इसका संचालन होता है।

तपोनिष्ठ, कर्मनिष्ठ लामा श्री एस. रिम्पोचे :

संस्थान के निदेशक आदरणीय श्री एस. रिम्पोचे हैं। हम लोग श्री रिम्पोचे महोदय से मिले। वे एक बौद्ध लामा हैं। बड़ा तपोनिष्ठ और कर्मनिष्ठ व्यक्तित्व उनका लगा। बौद्ध स्थापत्य के अनुरूप बना विशाल भवन, अध्ययन क्रम, सुन्दर व्यवस्था इत्यादि जो कुछ हमने देखा, बहुत ही मोहक लगा। श्रीमान् जमनालालजी ने बताया, यह जो हम यहाँ सब देख रहे हैं, इन एक व्यक्ति की तपस्या और साधना का फल है।

श्रद्धेय लामा को अपनी यात्रा, मद्रास विश्वविद्यालय के जैन विद्या विभाग आदि के सम्बन्ध में हमने बताया। वे प्रसन्न हुए। डॉ० शास्त्रीजी ने कार्य की विस्तार से चर्चा करते हुए उनसे कहा—जैनिज्म तथा बुद्धिज्म श्रमण संस्कृति की दो धारायें हैं। दोनों में बहुत कुछ समानता व सामीप्य है। यह सामीप्य बढ़े, यह अपेक्षित है। इससे विद्या-विकास के कार्य में बड़ा बल प्राप्त हो सकता है।

आदरणीय रिम्पोचे महोदय ने कहा—श्रमण संस्कृति की इन दो परम्पराओं का तुलनात्मक रूप में अध्ययन एक महत्वपूर्ण प्रसंग है। दक्षिण में जैन विद्या के लिए जो कार्य हो रहा है, जैसा आप बता रहे हैं, व्यापक दृष्टिकोण से कार्य होगा, यह बहुत सुन्दर है।

एक गुत्थी

पूज्य लामा ने बड़े चिन्तनपूर्ण स्वर में कहा—मेरे मन में बहुधा एक बात आती है, लोग बौद्ध दर्शन पढ़ते हैं, समीक्षात्मक तुलनात्मक दृष्टि से उस पर कार्य करते हैं, विद्वान बनते हैं। किन्तु उनमें वह आस्था उत्पन्न नहीं होती, वे बौद्ध धर्म स्वीकार नहीं करते। यह बात जैसे बौद्ध

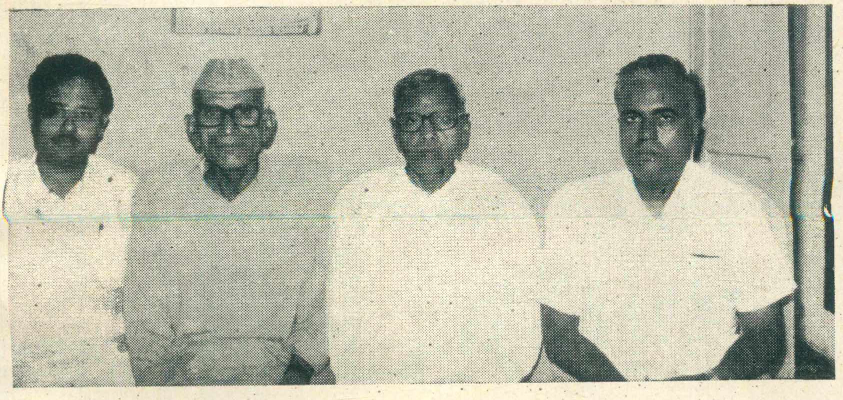

सारनाथ में प्रबुद्ध साहित्यसेवी, लेखक एवं सर्वोदयी चिन्तक श्री जमनालाल जैन के साथ शिष्ट मण्डल ।

सन्दर्भ पृष्ठ ४३ पर देखें

सारनाथ में बुद्ध-मन्दिर में बौद्ध-भिक्षुओं के साथ—

बायें से प्रथम—श्री जमनालाल जैन, दूसरे श्री एस० कृष्णचन्द चोरड़िया, तीसरे, चौथे, पाँचवें वैदेशिक बौद्ध भिक्षु, छठे डॉ० सी० बालसुब्रह्मण्यन्, सातवें डॉ० छगनलाल शास्त्री ।

सन्दर्भ पृष्ठ ४३ पर पढ़ें

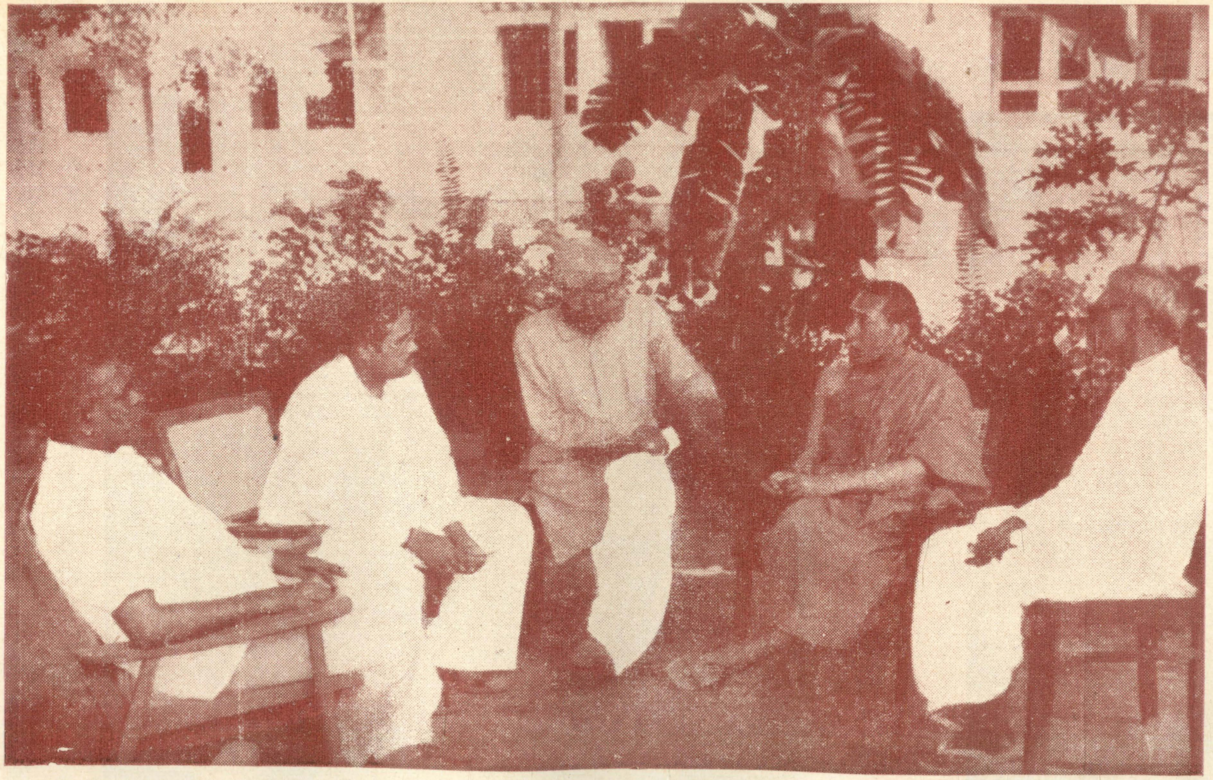

सारनाथ में केन्द्रीय तिब्बती उच्च शिक्षा संस्थान में संस्थान के निदेशक बौद्ध लामा श्री एस० रिम्पोचे के साथ जैन एवं बौद्ध दर्शन के समीक्षात्मक अध्ययन तथा अनुसंधान पर वार्तालाप करते हुए—

बायें से प्रथम—डॉ० सी० बालसुब्रह्मण्यन्, दूसरे—श्री एस० कृष्णचन्द चोरड़िया, तीसरे—डॉ० छगनलाल शास्त्री, चौथे—आदरणीय लामा श्री एस० रिम्पोचे तथा पाँचवें श्री जमनालाल जैन।

सन्दर्भ देखें पृष्ठ ४३-४४ पर

धर्म पढ़ने वालों पर लागू होती है, वैसे ही जैन आदि अन्य धर्म पढ़ने वालों पर भी लागू होती है। ऐसा क्यों होता है ? यह एक गुत्थी है। कैसे सुलझाएँ ?

मैंने बहुत आदर के साथ पूज्य लामा का सेवा में निवेदित किया—आप बहुत ठीक कह रहे हैं। आज हम ऐसी ही स्थिति से गुजर रहे हैं। इस पहलू पर विद्वानों को अधिक गहराई से चिन्तन करना चाहिए, यह बड़े महत्व का प्रश्न है।

इस चर्चा में भाग लेते हुए डॉ० शास्त्रीजी ने कहा—मूलतः बात यह है, आज मानव का व्यक्तित्व द्वैधग्रस्त है। उसका चिन्तन और कर्म बँटा हुआ है। जीवन में सामरस्य नहीं है। वह मात्र बौद्धिक तुष्टि के लिए कुछ जान लेना चाहता है। उसे अन्तर्तम तक नहीं पहुँचाता। शायद वैसा करना वह आवश्यक भी नहीं मानता। जैसा है, उसमें अपने को परितुष्ट मान लेता है। धर्म और दर्शन के आस्था पक्ष में वह रुचि नहीं लेता। जरूरी भी नहीं मानता। यों वर्तमान युग में सत्त्वोन्मुखी, सहजोन्मुखी भावचेतना संमूर्छित हुई है। इस समय शिक्षण-केन्द्रों का शिक्षण देने के साथ-साथ यह भी एक कर्तव्य है कि वे व्यक्तित्व-निर्माण की दिशा में मनोवैज्ञानिक दृष्टि से एक विशिष्ट कार्य पद्धति स्वीकार करें। वह कैसी हो, क्या हो, सहसा नहीं कहा जा सकता। उस पर गहन चिन्तन होना चाहिए।

पूज्य लामा के साथ जो भी वार्तालाप हुआ, बड़ा प्रेरक था। उन्होंने जैनोलॉजी के कार्य की उन्नति के लिए अपनी शुभ-कामनाएँ प्रकट कीं।

प्राकृत अध्ययन का मुख्य केन्द्र : आरा :

सारनाथ से हमने आरा के लिए प्रस्थान किया। ठीक दूरी ज्ञात नहीं थी, सोचा सायंकाल तक वहाँ पहुँच सकेंगे, रात्रि-प्रवास वहीं करेंगे, दूरी अधिक थी, वहाँ पहुँचना सम्भव नहीं हुआ। हमने रात्रि-प्रवास ससराम में किया, जो मुगलकाल में भारत का एक महत्वपूर्ण स्थान था, शेरशाह सूरी का जहाँ आवास रहा।

दिनांक ३०-७-८४ को ससराम से प्रस्थान कर हम लोग मध्याह्न में आरा पहुँचे, जहाँ प्राकृत, अपभ्रंश तथा जैन साहित्य के प्रख्यात विद्वान डा० राजाराम जी जैन एम. ए., पी-एच. डी. आदि से भेंट करने का कार्यक्रम था। डा० राजाराम जी आरा के एच. डी. जैन कालेज में जो बिहार

प्रदेश में प्रथम श्रेणी के इने गिने कालेजों में एक है, संस्कृत-प्राकृत विभाग के अध्यक्ष हैं। यह कालेज मगध विश्वविद्यालय बोध गया का अन्तर्वर्ती प्रमुख कालेज है।

डा० राजाराम जी इससे पूर्व रिसर्च इन्स्टीट्यूट आफ प्राकृत, जैनोलॉजी एण्ड अहिंसा, मुजफ्फरपुर में रह चुके हैं। वहाँ डा० शास्त्री जी का तथा उनका बड़ा नैकट्य रहा है।

देश के सुप्रसिद्ध विद्वान स्व० डा० नेमिचन्द्र जी शास्त्री ने यहाँ प्राकृत के अध्ययन-अध्यापन की नींव डाली थी। एच. डी. जैन कॉलेज के अतिरिक्त ब्रह्मर्षि कालेज में भी प्राकृत का अध्ययन चलता है, जहाँ डा० छगनलाल जी शास्त्री के शिष्य डॉ० रामजी राय एम० ए०, पी-एच० डी० प्राकृत विभाग के अध्यक्ष हैं। सैकड़ों विद्यार्थी यहाँ प्राकृत का अध्ययन करते हैं। डॉ० राजारामजी मगध विश्वविद्यालय के परीक्षा सम्बन्धी अनिवार्य कार्य से बोध गया गये हुए थे। उनके सहयोगी डॉ० चन्द्रदेव-रायजी एम० ए०, पी-एच० डी० से हमने भेंट की तब यह ज्ञात हुआ। डॉ० राय एक उत्साही युवा विद्वान हैं। डॉ० शास्त्रीजी के साथ वे प्राकृत रिसर्च इन्स्टीट्यूट, मुजफ्फरपुर में रहे हैं। डॉ० शास्त्रीजी के प्रति उनका बहुत आदर, श्रद्धाभाव एवं स्नेह है। कहने लगे—जब डॉ० शास्त्रीजी बिहार में थे, तब उनसे हमें बड़ी प्रेरणाएँ प्राप्त होती थीं। उनके बिहार में न रहने से हमें बड़ी कमी महसूस होती है।

डॉ० राय को हमने मद्रास विश्वविद्यालय में नवस्थापित जैन विद्या विभाग की स्थापना के बारे में जानकारी दी। वे क्षत्रिय हैं, क्षत्रिय के अनुरूप उनमें जोश है, तीव्र उत्साह है। वे कहने लगे—हम आपके कार्यों में पूरा सहयोग करेंगे। यहाँ से आपके वहाँ विद्यार्थी व शोधार्थी, जैसा आप चाहेंगे भिजवायेंगे, और भी जो हमारे योग्य कार्य होंगे, उन्हें हम सहर्ष करेंगे।

वैभार गिरि की तलहटी में

आरा से प्रस्थान कर हम लोग पटना होते हुए राजगृह गये। राजगृह प्राचीनकाल में भारतीय संस्कृति, राजनीति और धर्म का केन्द्र रहा है। विशेषतः श्रमण-संस्कृति का यह मुख्य पीठ-स्थान रहा है। भगवान् महावीर एवं तथागत बुद्ध के चरणों से यह भूमि पवित्र हुई है। सांस्कृतिक चेतनास्पद प्रेरकता को दृष्टिगत रखते हुए यहाँ लगभग १२ वर्ष पूर्व जैन जगत् के महान् विद्वान्, ध्यानयोगी कविवर्य उपाध्याय श्री अमरमुनिजी

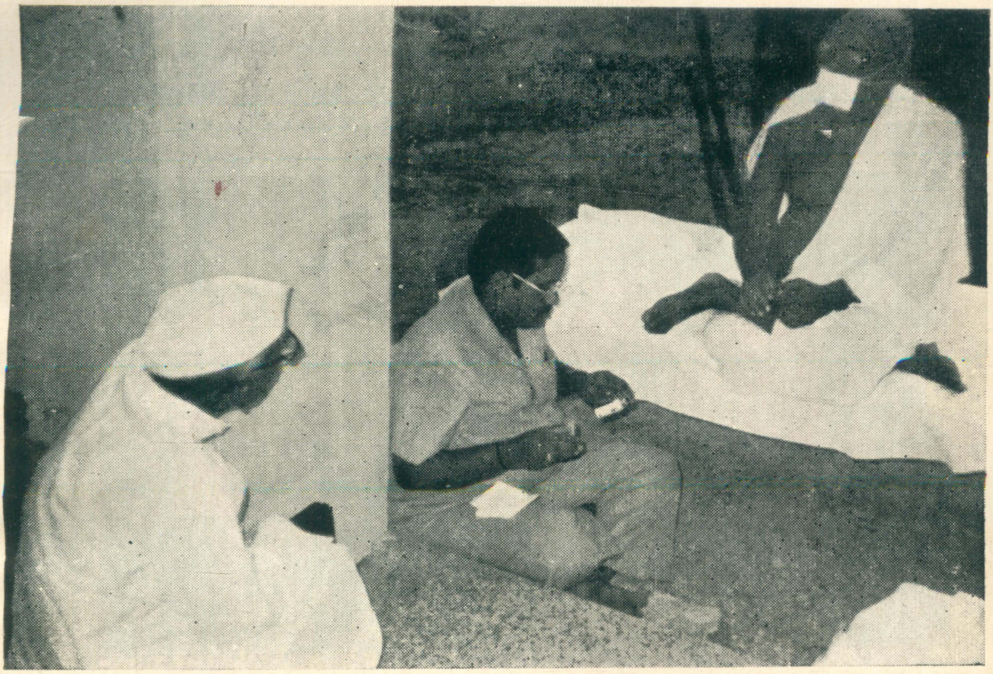

वीरायतन, राजगृह में राष्ट्रसंत, विश्रुतकीर्ति विद्वान्, कविवर्य उपाध्यायश्री अमरमुनिजी म० की सेवा में जैन विद्या के बहुमुखी अध्ययन तथा गहन शोधकार्यों पर विचार-विमर्श करते हुए पूज्य उपाध्यायश्री, श्री एस० कृष्णचन्द चोरड़िया तथा डॉ० छगनलाल शास्त्री।

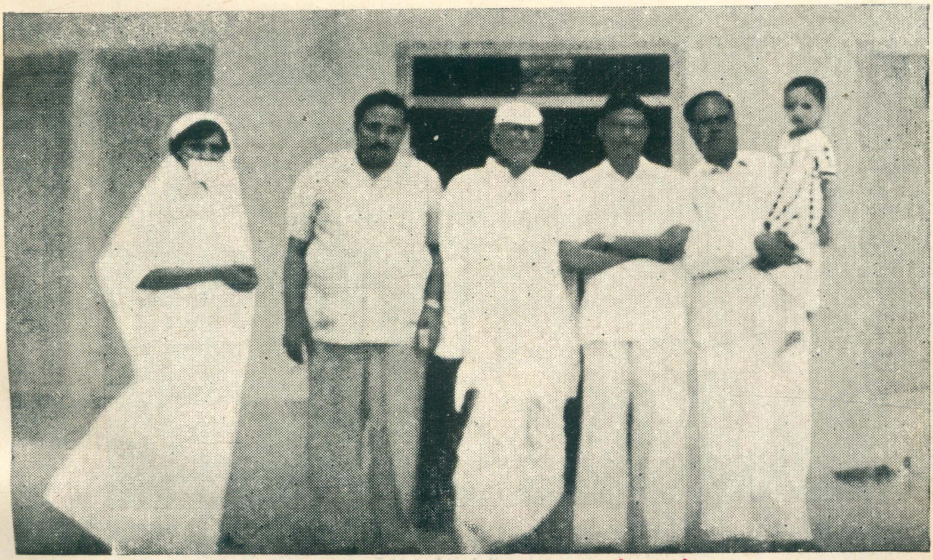

वीरायतन के विशाल ग्रन्थ भण्डार के आगे—

बायें से प्रथम – परम विदुषी साध्वी श्री चन्दनाजी म०, दूसरे—श्री एस० कृष्णचन्द चोरड़िया, तीसरे—डॉ० छगनलाल शास्त्री, चौथे—वीरायतन के व्यवस्थापक श्री हरकचन्द जैन तथा पांचवें—डॉ० सी० बालसुब्रह्मण्यन्। सन्दर्भ पृष्ठ ४६ पर

आरा (बिहार) में एच० डी० जैन कॉलेज के प्राध्यापक, प्राकृत एवं जैनोलॉजी के युवा मनीषी डॉ० चन्द्रदेवराय के साथ—

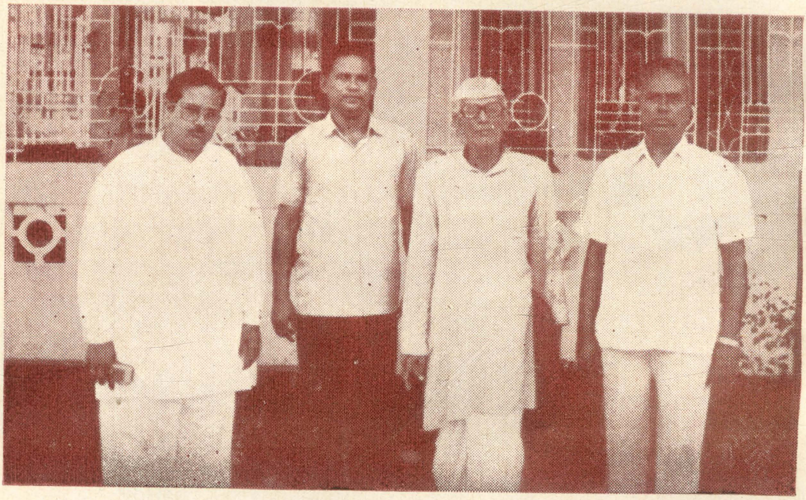

बायें से प्रथम—श्री एस० कृष्णचन्द चोरड़िया, दूसरे डॉ० चन्द्रदेवराय, तीसरे डॉ० छगनलाल शास्त्री एवं चौथे डॉ० सी० बालसुब्रह्मण्यन् । सन्दर्भ पृष्ठ ४५ पर

भारतवर्ष के प्राचीन विश्वविख्यात नालन्दा विश्वविद्यालय की पुण्यस्थली में—

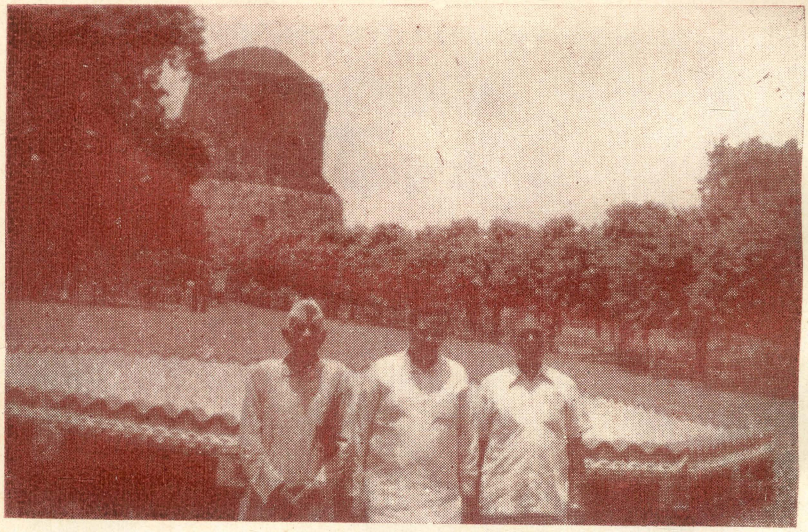

बायें से प्रथम डॉ० छगनलाल शास्त्री, दूसरे श्री एस० कृष्णचन्द चोरड़िया तथा तीसरे डॉ० सी० बालसुब्रह्मण्यन् । सन्दर्भ पृष्ठ ५० पर

म० की प्रेरणा से वीरायतन नानक संस्था स्थापित हुई। साहित्यिक तथा अनुसंधानात्मक दृष्टिकोण के साथ-साथ लोक-सेवा का महत्त्वपूर्ण कार्य इस सस्था के साथ जुड़ा है। अनेक सेवा-कार्य वहाँ चल रहे हैं। जैन धर्म के अहिंसा, करुणा एवं सेवा मूलक सिद्धान्तों को समाज से जोड़ने का सुन्दर उपक्रम यहाँ है। दिनांक ३१-७-८४ को प्रातः हम लोगों ने परम-श्रद्धेय उपाध्याय श्री अमरमुनिजी म०, पूज्य अखिलेशमुनिजी म० तथा परमविदुषी साध्वी श्री चंदनाजी म० के दर्शन किये।

विद्या-निष्णात मनीषी : चिन्तक :

मैंने अत्यन्त श्रद्धापूर्वक उपाध्याय श्री की सेवा में निवेदित किया, पिछले २५ वर्षों से आपके दर्शन की मेरी तीव्र उत्कण्ठा थी, मुझे बहुत प्रसन्नता है, आज वह अवसर प्राप्त हुआ। मेरे पूज्य पिताजी की भी आपके प्रति बहुत श्रद्धा थी, बड़ा आदर था। आगरा में उन्होंने आपके दर्शन किये थे। आपकी विद्वत्ता, आपका चिन्तन, आपका साहित्यिक कृतित्व हम लोगों के लिए गर्व का विषय है। आप विद्या-निष्णात मनीषी हैं। हमारा कर्तव्य है कि हम आपके व्यक्तित्व से अधिकाधिक लाभ लें।

मैंने उपाध्यायश्री की सेवा में मद्रास विश्वविद्यालय में संस्थापित जैन विद्या विभाग का, तत्सम्बन्धी कार्यों का तथा इस यात्रा का परिचय दिया और कहा कि आप जैसे महापुरुषों से प्राप्त प्रेरणा जीवन में एक बहुत बड़ा संबल होती है। अतएव हम आपकी सेवा में उपस्थित हुए हैं।

हमारे जैनोलॉजी के कार्य को विद्वद्वर डॉ० छगनलालजी शास्त्री का प्रारम्भ से ही मार्गदर्शन प्राप्त है। यह हमारे लिए हर्ष का विषय है। इस यात्रा की परिकल्पना भी इन्हीं के मस्तिष्क में आयी।

उपाध्यायश्री ने फरमाया—जब आप लोगों का पत्र आया और मैंने प्रस्तोताओं के नाम देखे, तब मेरे ध्यान में सहसा यही आया कि यह शास्त्रीजी की ही योजना प्रतीत होती है। प्रबुद्ध विद्वान तो ये हैं ही, साथ ही साथ ये अत्यन्त कार्यकुशल भी हैं।

मैंने डॉ० सी० बालसुब्रह्मण्यन्जी का परिचय देते हुए बताया कि ये तमिल साहित्य के बहुत बड़े विद्वान हैं। मद्रास विश्वविद्यालय में तमिल विभाग में अध्यक्ष हैं। हमारी यात्रा में ये शुरू से साथ हैं।

उपाध्यायजी ने फरमाया—आप तीनों का यह जो योग बना है, सदा कायम रहे, बना रहे, यह पूरा ध्यान रखें। उपयुक्त व्यक्तियों का

मेल मिलना बहुत कठिन होता है। डॉ० शास्त्रीजी के लिए तो हम भी ऐसा सोचते थे, उनको यहाँ ले आएँ।

मैंने उपाध्यायश्री के चरणों में निवेदन किया—आपके सुझाव हमारे लिए मन्त्र वाक्य हैं। हम सदा ध्यान में रखेंगे।

जैन धर्म की विराटता :

जैन संस्कृति एवं धर्म की विराट्ता की बात चली तो उपाध्याय श्री ने फरमाया—जैन धर्म सदा व्यापक और उदार रहा है। हम इसे संकीर्ण बना देते हैं तो हम ही इसकी गरिमा घटाते हैं। जैन धर्म में जो विराट् वाङ्मय सर्जित हुआ, वह उसकी उदार चेतना का परिचायक है। आज छोटी-छोटी बातों को लेकर हम परस्पर विवादापन्न हो जाते हैं, जो उचित नहीं है।

मैंने निवेदन किया—हमारे में यथार्थ ज्ञान का अभाव है, इसलिए हम यथार्थ स्थिति को समझ नहीं पाते, भूलें कर जाते हैं। समाज में ज्ञान का पक्ष बहुत दुर्बल हो गया है, इसलिए हम चाहते हैं कि ज्ञान के विकास का बहुमुखी प्रयत्न हो। मद्रास विश्वविद्यालय में जैनोलॉजी के विभाग की स्थापना इस ओर एक कदम है।

वीरायतन की कल्पना : पृष्ठभूमि :

मैंने सविनय पूछा—वीरायतन की स्थापना राजगृह में वैभार पर्वत की तलहटी में की गयी, इसके पीछे क्या चिन्तनधारा रही ?

साध्वी श्री चन्दनाजी ने इसके उत्तर में कहा—वैभारगिरि, तलहटी, यह भूमि अत्यन्त ऐतिहासिक भूमि है। ऐसे स्थान हमारी आंतरिक चेतना तथा स्फूर्ति को जागरित करते हैं। यदि प्रबुद्धचेता साधक प्रयत्न करे तो वह इससे बहुत बड़ी प्रेरणा ले सकता है। उदाहरणार्थ एक ध्यानस्थ पुरुष जब वैभारगिरि की उन्नत श्रेणियों को देखता है तो उसकी भावनाओं में स्वयं यह प्रेरणा व्याप्त हो जाती है कि मैं भी इन गिरिशिखरों की तरह ध्यान की आध्यात्मिक यात्रा में ऊँचे से ऊँचा उठता जाऊँ, ऊँची से ऊँची मंजिल तक पहुँचता जाऊँ।

दूसरी बात यह है, अध्ययन, चिन्तन एवं मनन की दृष्टि से यहाँ का वातावरण अत्यन्त शांत एवं सौम्य है, प्रेरणाप्रद है।

डॉ० शास्त्रीजी ने उपाध्यायश्री से निवेदन किया—हम लोग चाहते हैं, आपके ज्ञान से, आपके जीवन से अधिकाधिक लाभ प्राप्त करें, इसलिए

मैं यह सोचता हूँ, कभी-कभी स्नातकोत्तर कक्षाओं के छात्रों तथा शोधार्थियों के समुदाय के साथ आपकी सेवा में आया जाये, कुछ दिन रहा जाये, आपकी उपलब्धियों से लाभान्वित हुआ जाये।

उपाध्यायश्री ने फरमाया—यह तो बहुत सुन्दर चिन्तन है। समय-समय पर विद्वान लोग यहाँ आते ही हैं। डॉ० टाटिया साहब भी भाषण देने के लिए विदेश जाने से पूर्व कुछ दिन वहाँ की तैयारी हेतु यहाँ रहे थे। यहाँ का वातावरण अध्ययन में, चिन्तन में, मनन में वस्तुतः बहुत प्रेरक और सहायक है।

देखिये रामायण का प्रसंग है, राम-लक्ष्मण आदि मिथिला गये, जनक से वहाँ टिकने की आज्ञा मांगी। जनक बोले—यहाँ आपको रोकने के लिये कोई प्रहरी तो नहीं है, यह आपका ही घर है, आप जब चाहें आयें, टिकें, आप इसके अधिकारी हैं। यही बात हमारे यहाँ है। वीरायतन तो इसीलिए है। विद्वानों को, शिक्षार्थियों को इस से लाभ प्राप्त हो, यह इसके प्रमुख लक्ष्यों में से एक है।

मैं उपाध्यायश्री के विचारों से बहुत प्रभावित हुआ। मैंने उनसे कहा—गुरुदेव ! मेरा ऐसा विचार है, हम भवनों के निर्माण में पैसा न लगाएं। भवन एवं पुस्तकालय आदि जो बने हुए हैं, उन पर अर्थ-व्यय हो चुका है। हम उनका उपयोग करें। ऐसे अनेक भवन हैं, जो खाली रहते हैं, उनका कोई उपयोग नहीं होता। हम लोग विद्या के कार्य में, जो सजीव कार्य है, उनका उपयोग करें, विद्या पर अर्थ-व्यय करें।

उपाध्यायश्री—आप व्यापारी हैं, व्यापारी मस्तिष्क लाभ-हानि के मामले में बहुत कुशल होता है। आपका कथन ठीक है। जो वस्तुएँ पहले से बनी हुई हैं, वैसी और न बनवाकर पूर्ववर्ती वस्तुओं का उपयोग लिया जाय, यह उचित है।

दक्षिण में जैन धर्म की व्यापकता : क्षीणता :

दक्षिण में जैन धर्म की व्यापकता तथा उत्तरकाल में उसकी क्षीणता के कारणों के सम्बन्ध में विचार-विमर्श चला। मैंने निवेदित किया कि प्रोफेसर डॉ० सी. बालसुब्रह्मण्यन् सा० ने, जो आपके चरणों में समागत हैं, इस सम्बन्ध में बहुत सुन्दर विचार दिये। उन्होंने कहा कि जब दक्षिण में जैन धर्म के प्रचारार्थ श्रमणवृन्द आते रहे, पर्यटन करते रहे, तो धर्म उत्तरोत्तर बढ़ता गया। जब वहाँ जैन धर्म राज्याश्रित हो गया तो वह आगे से आगे क्षीण होता गया। यह ऐतिहासिक तथ्य है।

उपाध्यायश्री ने कहा—प्रोफेसर सा० का कहना ठीक है, राज्याश्रित होने से धर्म की आत्मा विकृत हो जाती है, वह लोकजनीन नहीं रहता, केवल नृपजनीन रहता है। उसका सत्त्व निकल जाता है। ऐसा होने पर वह क्षीण होगा ही।

और भी जैन विद्या सम्बन्धी विषयों पर वार्तालाप चला, जो हमारे लिये बड़ा प्रेरक तथा उद्बोधक था।

ब्राह्मी-कला-मन्दिरम् :

उपाध्यायश्री से वार्तालाप करने के पश्चात् हम लोग परमविदुषी साध्वी श्री चंदनाजी म० के साथ ब्राह्मी-कला-मंदिरम् में गये। वहाँ भगवान् ऋषभदेव से लेकर अब तक के जैन इतिहास के महत्त्वपूर्ण घटनाक्रमों का प्रतीकात्मक प्रत्याकारों के रूप में बहुत सुन्दर प्रस्तुतीकरण किया गया है। कला की सरसता में दर्शन की निगूढ़ता को तथा इतिहास की गरिमा को इस रूप में सम्बद्ध किया गया है कि देखने वालों पर बड़ा असर पड़ता है। ब्राह्मी-कला-मन्दिरम् के पीछे परमविदुषी साध्वी श्री चंदनाजी म० का कुशलतापूर्ण मार्गदर्शन है तथा उनकी सहवर्तिनी साध्वियों का विपुल श्रम है। ब्राह्मी-कला-मन्दिरम् की एक अद्भुत विशेषता यह है, जहाँ-जहाँ की जो-जो घटनाएँ यहाँ प्रतीकात्मक प्रत्याकारों के रूप में प्रदर्शित हैं, उनमें उन-उन स्थानों की मृत्तिका, पाषाण आदि पदार्थों का प्रयोग किया गया है।

विश्व-विख्यात नालन्दा की पुण्यस्थली में :

दिनांक ३१ जुलाई १९८४ को उपाध्यायश्री का आशीर्वाद, शुभ-कामनाएँ प्राप्त कर हम लोग नव नालन्दा महाविहार आए। नालन्दा का भारत के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान है। यहाँ विश्वविख्यात विश्व-विद्यालय था, जहाँ संसार भर से शिक्षार्थी ज्ञान प्राप्त करने आते थे। बिहार-भूमि में विक्रमशिला आदि और भी प्राचीनकाल में बड़े-बड़े विद्याकेन्द्र रहे हैं। मिथिला तो व्याकरण, नव्यन्याय, मीमांसा आदि का बहुत बड़ा पीठ रहा ही है।

लगभग ३० वर्ष पूर्व की घटना है, श्री जगदीशचन्द्र माथुर आई० सी० एस० बिहार में शिक्षा-सचिव थे। श्री माथुर साहब बहुत योग्य प्रशासनिक अधिकारी तो थे ही, साहित्य, इतिहास एवं संस्कृति भी उनके रुचि के विषय थे, उनकी कल्पना थी कि भारतीय विद्याओं के सन्दर्भ में बिहार का प्राचीन गौरव पुनः प्रतिष्ठापित हो। बिहार वैदिक

धर्म, जैन धर्म तथा बौद्ध धर्म तीनों का महत्त्वपूर्ण केन्द्र रहा है। तीनों धर्मों का, उनके मूल शास्त्रों की भाषाओं का यहाँ गहन अध्ययन हो, तत्सम्बन्धी अनुसंधान हो, ऐसी व्यवस्था यहाँ हो सके तो कितना अच्छा हो। श्री माथुर केवल कल्पनाकार ही नहीं थे, वे सर्जक भी थे। उनके प्रयास से बिहार सरकार ने नालन्दा में नव नालन्दा महाविहार के नाम से बौद्ध दर्शन एवं पालि के अध्ययन, अनुसंधानार्थ संस्थान की स्थापना की। वैशाली में रिसर्च इन्स्टीट्यूट ऑफ प्राकृत, जैनोलॉजी एण्ड अहिंसा के नाम से जैन दर्शन व प्राकृत के अध्ययन हेतु संस्थान की स्थापना की तथा दरभंगा में वैदिक दर्शन और संस्कृति के अध्ययन हेतु संस्कृत रिसर्च इन्स्टीट्यूट की स्थापना की। इन तीनों ही संस्थानों में स्नातकोत्तर एम० ए० का पाठयक्रम तथा पी-एच० डी० के लिए शोध का कार्यक्रम रखा गया। ये संस्थान आज भी कार्यरत हैं। इन तीनों में नव नालन्दा महाविहार का अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व है, क्योंकि यहाँ संसार के बौद्ध धर्मानुयायी देशों से अनेक बौद्ध भिक्षु अध्ययन, अनुसंधान हेतु आते हैं। इसकी स्थापना ईस्वी सन् १९५६ में हुई। पहले यह संस्थान पटना विश्वविद्यालय से सम्बद्ध था, अब यह मगध विश्वविद्यालय, बोध गया से सम्बद्ध है। यहाँ बौद्ध दर्शन, पालि, संस्कृत, प्राचीन भारतीय संस्कृति तथा इतिहास के सिवाय तिब्बती, जापानी, मंगोलियायी एवं चीनी भाषाओं के अध्ययन की भी व्यवस्था है। एक अच्छा छात्रावास है, जिसमें १०० छात्रों के आवास की व्यवस्था है। यहाँ का पुस्तकालय बहुत समृद्ध है। लगभग ३०,००० पुस्तकें यहाँ हैं, जो अनेक भाषाओं में हैं। तिब्बती, चीनी हस्तलिखित पाण्डुलिपियाँ भी यहाँ संगृहीत हैं। यहां डॉ० मौलिचन्द्र प्रसाद एम० ए०, पी-एच० डी०, प्रो० रिन्जिमलन्दूप लामा, डॉ० मिथिलेश्वरप्रसाद एम० ए०, पी-एच० डी० आदि विद्वानों से भेंट की। यहाँ भी डॉ० शास्त्रीजी के कई अच्छे मित्र हैं। इन विद्वानों को हमने मद्रास के कार्य के सम्बन्ध में बतलाया। इन्होंने बड़ी प्रशंसा की तथा कार्य की वर्धापना की। नव नालंदा महाविहार धान के लहलहाते खेतों के बीच एक बहुत ही रमणीय स्थान है। वातावरण अध्ययनमय है। यह उस स्थान से बहुत दूर नहीं है, जहाँ प्राचीन भारत का नालन्दा विश्व-विद्यालय था।

बिहार की राजधानी में :

नालन्दा से हम लोग पटना आये। दिनांक १ अगस्त १९८४ को

वहाँ रिसर्च इन्स्टीट्यूट ऑफ प्राकृत, जैनोलॉजी एण्ड अहिंसा, वैशाली के भूतपूर्व कार्यवाहक निदेशक डॉ० आर० पी० पोद्दार एम० ए०, पी-एच० डी० तथा प्रमुख विद्वान् डॉ० रंजनसूरिदेव एम० ए०, पी-एच० डी० आदि से मिले। डा० पोद्दार साहब प्राकृत इन्स्टीट्यूट, वैशाली में काफी समय रहे। इस समय वे बिहार राज्य के पुस्तकालयों के अधीक्षक पद पर स्थानान्तरित हुए हैं। डॉ० पोद्दार साहब प्राकृत तथा जैन साहित्य के प्रबुद्ध विद्वान् हैं, बड़े उत्साही हैं, सौम्यचेता हैं।

हम उनसे मिलने हेतु वैशाली जाना चाहते थे, किन्तु आरा में डॉ० चन्द्रदेवरायजी से यह ज्ञात हो गया था कि वे वैशाली में नहीं, पटना में हैं। सिन्हा लाइब्रेरी में, जो बिहार की बहुत बड़ी और महत्त्वपूर्ण लाइब्रेरी है, उनका कार्यालय है। हमने उनसे वहीं भेंट की। मद्रास के जैन विद्या सम्बन्धी कार्य से उन्हें अवगत कराया। वैशाली में चल रहे अध्ययन, अनुसंधान के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की। सन् १९५५ में बिहार सरकार द्वारा संस्थान की स्थापना हुई। इसका प्रारम्भ मुजफ्फरपुर में एक किराये के भवन में हुआ। १९६५ में यह संस्थान भगवान् महावीर के जन्म-स्थान वासुकुण्ड-वैशाली में अपने निजी भवन में चला गया। भवन-निर्माण स्व० साहू शान्तिप्रसादजी जैन के आर्थिक सहयोग से हुआ। यह बिहार विश्वविद्यालय मुजफ्फरपुर से सम्बद्ध है। अब तक लगभग ३५ से अधिक विद्वानों ने वहाँ रहकर शोध कार्य कर पी-एच० डी० प्राप्त की है।

डॉ० शास्त्रीजी अध्ययन, अनुसंधान तथा अध्यापन तीनों ही कार्यों से वैशाली में रहे हैं। वह उनका प्रमुख विद्या-स्थान है। डॉ० पोद्दार साहब से उनका घनिष्ठ स्नेह-सम्बन्ध है।

पटना में डॉ० शास्त्रीजी के एक शिष्य प्रो० डी० पी० श्रीवास्तव हैं, जो पटना के एक कालेज में प्राकृत विभाग के अध्यक्ष हैं। उनके पास भी प्राकृत के १०० से अधिक विद्यार्थी हैं। उनके यहाँ भी हमारा मिलने हेतु जाने का कार्यक्रम था, पर ऐसा शुभ संयोग बना, वे स्वयं ही सिन्हा लाइब्रेरी में डॉ० पोद्दार साहब के कार्यालय में आ गए। डॉ० शास्त्रीजी के प्रति उनकी अनन्य श्रद्धा है, वे उनके पास सरदारशहर भी रहे हैं।

साहित्यिक चर्चा :

डॉ० पोद्दार सा० के कार्यालय में ही हम लोगों ने वहाँ जैन विद्या के सम्बन्ध में चर्चायें की। चर्चा चलते-चलते गुणाढ्य द्वारा प्राकृत में

रचित वृहत् कथा का प्रसंग आया, जो भारतीय कथा साहित्य की एक अद्भुत कृति है, किन्तु अब अनुपलब्ध है। डॉ० सी० बालसुब्रह्मण्यन्जी ने इस सम्बन्ध में तमिल के प्राचीन उद्धरणों के साथ बताया कि यह कथा दक्षिण में भी आई, रूपान्तरित हुई। डॉ० पोद्दार सा० ने कहा—यह बहुत महत्त्वपूर्ण बात है, हम लोग नहीं जानते थे कि दक्षिण तक भी यह कथा पहुँची। उत्तर और दक्षिण के साहित्यिक लिंक का पता लगाने में यह बहुत उपयोगी प्रसंग बन सकता है। और भी अनेक विषयों पर वार्तालाप हुआ।

डॉ० पोद्दार सा० का सुझाव रहा कि जो छात्र आपके यहाँ जैन दर्शन पढ़ें, वे अनिवार्य रूपेण प्राकृत अवश्य पढ़ें, क्योंकि भगवान् महावीर की मूल भाषा प्राकृत थी। जैन धर्म का मौलिक साहित्य प्राकृत में ही है। बिहार विश्वविद्यालय में यह विभाग इसीलिए प्राकृत एण्ड जैनोलॉजी के नाम से है।

शोध-छात्रों की अपेक्षा : परिपूर्ति :

मैंने बताया कि हम मद्रास विश्वविद्यालय में एम० फिल० का अध्ययन शीघ्र चालू कराना चाहते हैं। जैनोलॉजी में एम० फिल० में उन्हीं छात्रों को एडमिशन मिल सकेगा, जो प्राकृत एवं जैनोलॉजी में एम० ए० हैं। संस्कृत और फिलोसॉफी में एम० ए० किये हुए छात्र वहाँ एम० फिल में नहीं लिये जा सकेंगे। हम चाहते हैं, जो जैनोलॉजी में एम० फिल० में आएं उनकी अध्ययन-सम्बन्धी पृष्ठभूमि खूब मजबूत हो ताकि वे अच्छे विद्वान् बन सकें। आगे शोधकार्य भी बहुत ऊंचे स्तर का कर सकें।

शुरुआत में एम० फिल० में हमें छात्र बिहार में ही प्राप्त हो सकेंगे, क्योंकि केवल बिहार विश्वविद्यालय में ही प्राकृत तथा जैनोलॉजी एम० ए० में स्वतंत्र विषय है। आप लोग यहाँ से छात्र प्राप्त कराने में सहयोग कीजियेगा।

प्रो० श्रीवास्तव ने कहा—हम एम० फिल० के लिये बहुत अच्छे पाँच छात्र आपको दे सकेंगे। हाँ, इतना अवश्य है, आपको उन्हें छात्रवृत्ति देनी होगी, क्योंकि यहाँ के विद्याजीवी पुरुषों की आर्थिक स्थिति बहुत सामान्य है। वे स्वयं खर्च वहन कर उच्च अध्ययन में नहीं जा सकते।

मैंने कहा—हम लोग छात्रवृत्तियों की व्यवस्था करेंगे। विद्यार्थियों को अध्ययन सम्बन्धी और भी सुविधाएँ देंगे।

बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् द्वारा प्रकाशित परिषद् पत्रिका के

सम्पादक, प्राच्य भाषाओं तथा जैनोलॉजी के प्रमुख विद्वान् डॉ० रंजन-सूरिदेव एम० ए०, पी०-एच० डी. से हम लोग बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् के कार्यालय में मिले। यह संस्था बिहार राज्य द्वारा संस्थापित, संचालित एक महत्त्वपूर्ण साहित्यिक, अनुसंधानामत्क सस्थान है। साहित्य-प्रकाशन का काफी महत्त्वपूर्ण कार्य इसकी ओर से हुआ है। डॉ० रंजनसूरिदेव मद्रास में जैनोलॉजी के सन्दर्भ में हुई प्रगति के विषय में जानकर बहुत हर्षित हुए। उन्होंने कहा कि जैन विद्या के राष्ट्रव्यापी तथा अन्तर्राष्ट्रव्यापी प्रसार की दृष्टि से यह एक उत्तम कार्य हुआ है, मद्रास इसके लिए एक उपयुक्त क्षेत्र है।

मैंने डॉ० रंजनसूरिदेव से अनुरोध किया कि आप जैसे प्राच्य भाषाविदों की, दर्शनविदों की शुभकामनाएँ, शुभाशीर्वाद हमें सदा प्रेरणा देते रहेंगे। समय-समय पर जब जैसा अपेक्षित हो, कृपया आप सहयोग करते रहें।

डॉ० रंजनसूरिदेव ने बहुत प्रसन्नता से कहा—ऐसे कार्य में कौन विद्या-व्यासंगी पुरुष सहयोगी नहीं होगा।

कलकत्ता में विद्वत्प्रसंग : विचार-विमर्श :

दिनांक १ अगस्त १९८४ को सायकाल पटना के प्रस्थान कर दिनांक २ अगस्त १९८४ को प्रातः हम लोग कलकत्ता पहुँचे। वहाँ शेक्सपियर सरणि में विद्यमान भारतीय भाषा परिषद् भवन में रुके, जो भारतवर्ष की विभिन्न भाषाओं के विद्वानों, प्राध्यापकों, पत्रकारों एवं कलाकारों के आवास-विश्राम हेतु निर्मापित है। कलकत्ता में डॉ० बी० एल. खींवसरा, एम. बी. बी. एस., डी. टी. एम. एच., जैन विश्व भारती लाडनूं के कुलपति श्रीचन्दजी रामपुरिया बी० कॉम०, बी० एल० तथा कलकत्ता विश्वविद्यालय में भाषा विज्ञान विभाग में प्राध्यापक डॉ० सत्यरंजन बैनर्जी एम० ए०, पी-एच० डी० से भेंट करनी थी। हम पहले पहल डॉ० खींवसराजी से मिले। वैसे डॉ० खींवसराजी मेडिकल लाइन के व्यक्ति हैं किन्तु उनको धार्मिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक कार्यों में बड़ी अभिरुचि है। वे कलकत्ता में जैन समाज के एक अच्छे सेवाभावी कार्यकर्ता हैं। डॉ० शास्त्रीजी के प्रति उनके मन में बड़ा आदर है। सरदारशहर उनका ननिहाल है। डॉ० खींवसरा पूर्वसूचित थे ही। वे हम लोगों की प्रतीक्षा में थे, बहुत प्रसन्न हुए। मद्रास के कार्य की प्रगति जानकर उन्होंने कहा कि जैन संस्कृति को आगे बढ़ाने का यह सही

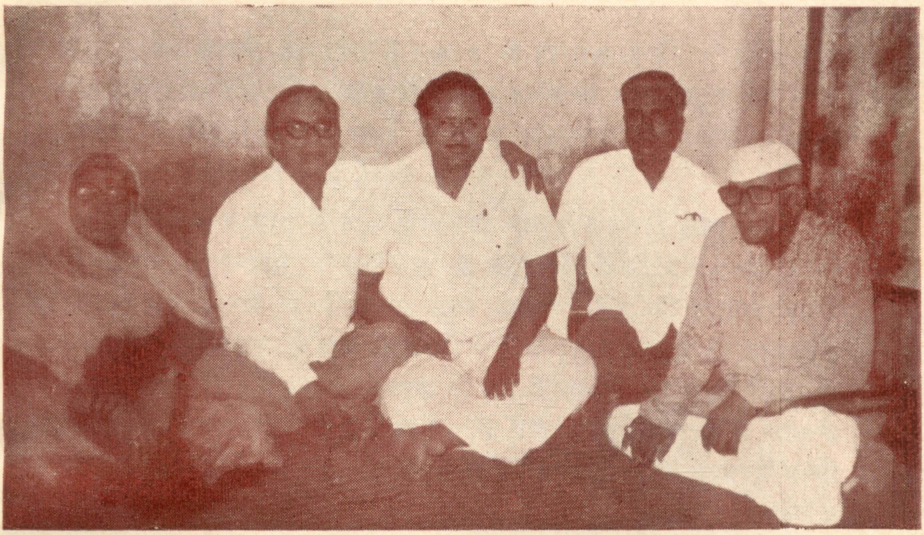

कलकत्ता में सुप्रसिद्ध जैन समाजसेवी तथा चिन्तक डॉ० बी० एल० खींवसरा के साथ—
बायें से प्रथम—श्रीमती डॉ० बी० एल० खींवसरा, दूसरे डॉ० बी० एल० खींवसरा, तीसरे—श्री एस० कृष्णचन्द चोरड़िया, चौथे—डॉ० सी० बालसुब्रह्मण्यन् तथा पांचवें – डॉ० छगनलाल शास्त्री। सन्दर्भ पृष्ठ ५४ पर

कलकत्ता विश्वविद्यालय के भाषा-विज्ञान के प्राध्यापक, प्राकृत आदि के विशेषज्ञ डॉ० सत्यरंजन बैनर्जी के साथ—
बायें से प्रथम—डॉ० सी० बालसुब्रह्मण्यन्, दूसरे—डॉ० सत्यरंजन बैनर्जी तथा तीसरे श्री एस० कृष्णचन्द चोरड़िया। सन्दर्भ पृष्ठ ५८ पर

रास्ता है, जो आपने अपनाया है। ज्ञान के विकास से ही संस्कृति और धर्म का विकास होता है। आज जैन तत्त्व दर्शन के ज्ञाता बहुत कम लोग रह गये हैं। विश्वविद्यालय-स्तर से गहन अध्ययन की व्यवस्था अपने आप में बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य है।

कलकत्ता के कार्य में डॉ० खींवसरा लगातार हमारे साथ रहे। हम लोग श्रीयुत श्रीचन्दजी रामपुरिया के यहाँ भेंट करने गये। श्री रामपुरियाजी हम लोगों से मिलकर बहुत प्रसन्न हुए। श्री रामपुरियाजी कलकत्ता में आयकर के एक यशस्वी वकील रहे हैं। साथ ही साथ एक जैन साहित्य-सेवी, लेखक व चिन्तक के रूप में उन्होंने जो कार्य किया है, वह वास्तव में प्रशंसनीय है। वकालत के पेशे में रहते हुए भी वे ज्ञान के क्षेत्र में इतना समय देते रहे, यह प्रसन्नता की बात है। श्री रामपुरियाजी मद्रास विश्वविद्यालय में संस्थापित सर्वांग सम्पन्न जैन विद्या विभाग के विषय में जानकर बहुत प्रसन्न हुए।

मैंने श्री रामपुरियाजी से जैन विश्व भारती, लाडनूं के कार्य के सम्बन्ध में जिज्ञासा की।

उन्होंने बताया कि वहाँ कई प्रकार के कार्य चल रहे हैं……

सेवाभावी कल्याण केन्द्र के अन्तर्गत वहाँ आयुर्वेद के प्रायोगिक अनुसंधान, वनोषधियों की खोज आदि कार्य चलते हैं। चिकित्सा कार्य चलता है।

मैंने उनसे कहा—रिसर्च की दृष्टि से जैन आगमों में आयुर्वेद के सम्बन्ध में जो वर्णन प्राप्त होता है, उस ओर भी आप लोगों का ध्यान होगा ?

श्री रामपुरियाजी ने कहा—ध्यान देने का विषय तो यह है ही किन्तु आयुर्वेद के सम्बन्ध में जैन आगमों में बहुत अधिक उल्लेख नहीं हुआ है। आयुर्वेद पर जैन अजैन सभी विद्वानों ने लिखा है, यह सबका है। यह प्राचीन विद्या है, इस दृष्टि से इस दिशा में हमारा कार्य है। भविष्य में भी विशेष रूप से गवेषणा आदि की परिकल्पनाएँ हैं।

योग तथा ध्यान को लेकर भी हमारे यहाँ कार्य चल रहा है।

मैंने कहा—योग की कई शाखाएँ हैं, पातंजल योग, हेमचन्द्र का योगशास्त्र आदि, आपका दृष्टिकोण इस सम्बन्ध में क्या है ?

श्री रामपुरियाजी—प्राचीन यौगिक पद्धतियों के अनुशीलन के साथ ध्यान की एक विशेष विधा प्रस्तुत की गई है।

मैंने कहा—आप प्रेक्षा ध्यान के विषय में कह रहे हैं ?

श्री रामपुरियाजी—हाँ, मैं उसी ओर इंगित कर रहा हूँ। इस सम्बन्ध में शरीर-विज्ञान को भी साथ लेना होगा। शरीर-विज्ञान को समझे बिना ध्यान में प्रगति होने में अनेक कठिनाइयाँ आती हैं। इसलिए शास्त्रीय दृष्टि, वैज्ञानिक दृष्टि आदि को लेकर हमारे यहाँ इस विषय में कार्य किया जा रहा है।

शोध की दृष्टि से आगम-प्रकाशन का कार्य है। आगमों के सम्पादन में विभिन्न पाठान्तर प्रस्तुत किये गये हैं, किये जाते हैं। जाव द्वारा सूचित पाठों की खोज की जाती है। जैन इनसाइक्लोपीडिया का भी कार्य चल रहा है। पर्यायवाची शब्दों का एक कोष प्रकाशित हुआ है। विषयानुक्रम के आधार पर जैन दर्शन से सम्बद्ध विषयों को उपस्थित करने वाले ग्रन्थ भी प्रकाशित करने की हमारी योजना है।

वर्तमान युग में जैन दर्शन का स्थान :

श्री रामपुरियाजी ने एक विशेष बात यह कही—आज जगत् की जो स्थिति है, उसमें जैनोलॉजी का स्थान बना है। जिस संघर्षपूर्ण युग में आज हम जी रहे हैं, उसमें शान्ति हेतु जैन आइडियोलोजी की चिन्तन-धारा को समझने की ओर एक बौद्धिक झुकाव हुआ है। यह बड़े महत्त्व का विषय है। आज ऐसी स्थिति बनी है कि विभिन्न धर्मों के लोग एक दूसरे के निकट आना चाहते हैं। इसे हमें समझना चाहिए और जैनधर्म को बौद्धिक स्तर पर प्रस्तुत करना चाहिए।

शैक्षिक यात्रा की फलवत्ता :

मैंने श्री रामपुरियाजी से निवेदन किया—देश के विद्वानों, अनुभवी, सुयोग्य पुरुषों के विचारों से लाभान्वित होने हेतु हमने इस यात्रा का कार्यक्रम बनाया। आपका हमें सान्निध्य मिल सका, यह हमारे लिए बहुत प्रसन्नता का विषय है।

श्री रामपुरियाजी—आपका प्लानिंग सुन्दर है। आपकी यह बहुत अच्छी शुरुआत है। ऐसी यात्रा से कई प्रकार के लाभ होते हैं। कहाँ क्या कार्य हो रहे हैं, उन्हें स्वयं देखने का अवसर मिलता है। किस विधि से कार्य किये जा रहे हैं, इसकी जानकारी होती है। संस्थाओं को कब-कब क्या-क्या कठिनाइयाँ आती हैं, यह ज्ञात होता है। इस क्षेत्र में कार्यरत विद्वानों तथा समाजसेवी, विद्यासेवी पुरुषों से सम्पर्क होता है। कार्य में पारस्परिक जुड़ाव बनता है।

नये विद्वान तैयार करें :

मैंने श्री रामपुरियाजी से विद्वानों के विषय में संकेत करने हेतु निवेदन किया।

उन्होंने कहा—सुयोग्य विद्वान नहीं मिल पा रहे हैं, हमें भी जैन विश्व भारती में इससे बड़ी कठिनाई अनुभव हो रही है।

मैंने आत्मविश्वास के साथ उनसे कहा—इस दिशा में समुचित रूप में जी जान से प्रयत्न करें तो हमें विश्वास है, यह कठिनाई अवश्य ही दूर हो जायेगी। हमें सुयोग्य प्रतिभाशाली छात्रों को इस ओर आकृष्ट करना है तथा भविष्य में वे कार्यरत रह सकें ऐसी, व्यवस्था करनी है। कुछ समय बाद निश्चय ही विद्वान मिलने लगेंगे। मैं इसे न अशक्य मानता हूँ और न दुःशक्य ही।

श्री रामपुरियाजी—मैं आपके उत्साह का आदर करता हूँ। एक सुझाव आपको देना चाहूँगा। जैन विद्या के कई विभाग हैं, कई शाखाएँ हैं। सब लोग सब विषयों के मर्मज्ञ नहीं हो सकते। इसलिए आप अलग-अलग विषयों के अलग-अलग विद्वान तैयार करें। जिन-जिन को जिन-जिन विषयों में रुचि हो, उनको वे-वे विषय दें। उनमें वे निष्णात हो सकेंगे। इसका बड़ा लाभ यह होगा कि इससे आप देश के उन अन्यान्य संस्थानों को भी, जहाँ जैनोलॉजी के अध्ययन, अध्यापन का कार्य चलता है, फीड कर सकेंगे। जहाँ जैसे विद्वानों की आवश्यकता होगी, आप वैसे विद्वान भेज सकेंगे।

वार्तालाप के मध्य श्री रामपुरियाजी ने श्रीयुत डॉ. छगनलालजी शास्त्री को सम्बोधित कर कहा—देखिये, यह विद्या का कार्य है, आपको इसमें जीवन का भोग देना होगा, तभी यह सफल हो सकेगा। क्योंकि ऐसे कार्यों की सफलता विद्वानों द्वारा ही साध्य है।

संगोष्ठियाँ : प्रश्नोत्तर : उपादेयता :

जैन विद्या के सन्दर्भ में आजकल समय-समय पर काफी संगोष्ठियाँ-सेमिनार्स हो रहे है। उस विषय में भी श्री रामपुरियाजी के साथ चर्चा चली। उन्होंने कहा—सेमिनार्स हो रहे हैं, यह विचार-विनिमय की दृष्टि से अच्छा है, किन्तु सेमिनार्स की जो रिपोर्टिंग होनी चाहिए, वैसी हो नहीं पाती।

कोई विद्वान किसी विषय पर शोध-निबन्ध पढ़ता है। पढ़ने के बाद उस पर जो प्रश्नोत्तर होते हैं, वे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होते हैं। वहाँ ऐसे

तत्त्व चर्चित होते हैं, ऐसे तथ्य प्रकाश में आते हैं, जो अनुसंधान की दृष्टि से, नवसर्जन की दृष्टि से बहुत उपयोगी होते हैं, किन्तु उनकी रिपोर्टिंग प्रायः नहीं होती, अपर्याप्त होती है। इससे सेमिनारों द्वारा जो लाभ प्राप्त होना चाहिए, हो नहीं पाता। अत सभी संस्थानों के व्यक्तियों को सेमिनार आयोजित करते समय इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिए।

मैंने कहा—आपका सुझाव बहुत ही सुन्दर है, बड़ा उपयोगी है।

दिनांक २ अगस्त १९८४ को हम लोग कलकत्ता विश्वविद्यालय के भाषा विज्ञान के प्राध्यापक डॉ० सत्यरंजन बैनर्जी एम० ए०, पी-एच० डी० से मिले। डॉ० बैनर्जी भारतीय भाषाओं तथा भाषा-विज्ञान के अच्छे विद्वान् हैं, उत्साही हैं। प्राच्य भाषाओं में प्राकृत पर उनका विशेष कार्य है।

हमारे आगमन पर उन्होंने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा कि उन्हें बड़ा हर्ष है, उनके विचार जानने हम लोग उनके पास पहुँचे।

जैनोलॉजी का पाठ्यक्रम एवं अनुसंधान

मैंने श्री बैनर्जी से जैनोलॉजी के पाठ्यक्रम तथा अनुसंधान के संदर्भ में उनके विचार जानने चाहे।

उन्होंने कहा—जैनोलॉजी पर जो अनुसंधान कार्य हो, वह गहन होना चाहिए। अनुसंधाता को विषय का व्यापक ज्ञान होना चाहिए। शोध में गृहीत विषय के प्राचीन से अर्वाचीन तक के विकास का गहन अध्ययनपूर्ण, तर्कसंगत विवेचन होना चाहिए। आज हमारे देश में अनुसंधान का स्तर नीचे गिरता जा रहा है। इस क्षेत्र में हमें अत्यन्त जागरूक होना आवश्यक है।

पाठ्यक्रम में हमें वैविध्यपूर्ण विस्तृत अध्ययन की दृष्टि से अनेक सैक्शन्स रखने चाहिए। क्योंकि शिक्षार्थी एक ही रुचि के नहीं होते, इसलिए भाषा, धर्म, तत्त्वज्ञान, पुरातत्त्व आदि अनेकविध ग्रूप्स निर्धारित करने चाहिए। इससे जिन-जिन शिक्षार्थियों को जिन जिन ग्रूप्स में अभिरुचि होगी, वे उसमें अध्ययन करेंगे। रुचिपूर्वक किया जाने वाला अध्ययन विशेष फलप्रद सिद्ध होता है।

मैंने डॉ० बैनर्जी से जिज्ञासा की --क्या अध्ययन मूल-ग्रन्थों से किया जाना आप आवश्यक मानते हैं या उनके अनुवाद तथा व्याख्या-ग्रन्थ आदि से करना पर्याप्त समझते हैं।

डॉ० बैनर्जी ने कहा—मैं आवश्यक मानता हूँ कि जैनोलॉजी के मूलग्रंथ जो अर्धमागधी एवं शौरसेनी प्राकृत में हैं, से ही मूल विषयों का अध्ययन करना चाहिए। वह अध्ययन तलस्पर्शी होता है। विषय की तह तक पहुँचाता है।

मैंने उनसे कहा— हमने एम० ए० से पूर्व सर्टिफिकेट कोर्स, डिप्लोमा कोर्स तथा हायर डिप्लोमा कोर्स तीन पाठ्यक्रम और रखे हैं। इनके पाठ्यक्रम में मूलग्रन्थों के अपेक्षित अंश स्वीकार किये गये हैं। तत्सम्बन्धी दूसरा साहित्य भी रखा गया है। हम लोग पाठ्यक्रमों के लिए निर्देशित भागों को लेकर ऐसी पुस्तकें तैयार करना चाहते हैं, जिससे विद्यार्थियों को एक प्रश्नपत्र की तैयारी के लिये अनेक पुस्तकों की तलाश न करनी पड़े। जैनोलॉजी की पुस्तकें आसानी से प्राप्त भी तो नहीं होती। क्योंकि जो पुस्तक आउट आफ प्रिण्ट हो जाती है, उसका पुन: प्रकाशन कठिनाई से होता है।

हमारा यह भी विचार है, मूल टैक्स्ट्स प्राकृत, संस्कृत में रहे, पृथक्-पृथक् तमिल, हिन्दी व अंग्रेजी में उसके अनुवाद हों, जिससे तमिलभाषी, हिन्दीभाषी तथा अन्य समग्र भारतीय अंग्रेजी द्वारा लाभ ले सकें।

डॉ० बैनर्जी—आपकी योजना बहुत ही सुन्दर है। इससे विद्यार्थियों को बहुत लाभ होगा। पाठ्यक्रम में जो भी ग्रन्थ रखे जायं, वे ऐसे हों, जो समग्रतया जैन दर्शन का प्रतिनिधित्व करें। उत्तराध्ययन, दशवैकालिक आदि महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों के विभिन्न अंश ग्रहण किये जा सकते हैं, और भी ऐसे ही ग्रन्थों को सांप्रदायिक भेद के बिना लिया जा सकता है। पाठ्यक्रम का स्तर अन्य विश्वविद्यालयों के समकक्ष उच्चता लिये होना चाहिये, जिससे उसकी प्रतिष्ठा बढ़े।

बातचीत के मध्य डॉ. सी. बालसुब्रह्मण्यन्‌जी ने कहा—हमारा पाठ्यक्रम विश्वविद्यालय की गरिमा के अनुरूप हो, यह आवश्यक है। डॉ. बैनर्जी जो सुझाव दे रहे हैं, वे बहुत सुन्दर हैं।

जैनोलॉजी में अनुसंधान की सूक्ष्मता तथा गम्भीरता पर पुन: चर्चा चलने पर डॉ. बैनर्जी ने कहा—किसी भी विषय का अथ से इति तक उसके विकास की मंजिलों का पर्यवेक्षण करते हुए निरूपण करना चाहिए। उदाहरणार्थ हम यदि अहिंसा को लेते हैं, उस पर शोध-कार्य करते हैं तो सबसे पहले मूल ग्रन्थों में इस सम्बन्ध में जो विवेचन-विश्लेषण है, उसे

प्रस्तुत करना चाहिए, फिर उत्तरवर्ती साहित्य में उसका जो स्वरूप है, उसकी समीक्षा करनी चाहिए। फिर आगे के विकास की खोजपूर्ण व्याख्या करनी चाहिए।

उदाहरणार्थ—अहिंसा का सामान्य आशय किसी को नहीं मारना है। आगे चलकर अहिंसा के साथ मनसा, वाचा का जो योग बनता है, उसे गवेषित करना होगा। यों विकास के सब परत खोलने होंगे। बड़ी पैनी व सूक्ष्म दृष्टि से खोज करनी होगी। तभी सही माने में रिसर्च होंगे।

हम लोगों ने डॉ. बैनर्जी को उनके सुझाव तथा सत्परामर्श के लिए हार्दिक धन्यवाद ज्ञापित किया।

यात्रा का सुखद समापन :

उसी दिन अपराह्न में हम कलकत्ता से प्रस्थान कर दिनांक ४ अगस्त १९८४ को सायंकाल मद्रास पहुँच गये। हमारी १७ दिन की यात्रा का यह संक्षिप्त विवरण है। मैं प्रबंध समिति का, प्रेसिडेंट महोदय का, चेयरमैन महोदय का तथा सभी सहयोगियों का आभारी हूँ, जिनकी प्रेरणा से यह महत्त्वपूर्ण यात्रा सम्पन्न हो सकी। डॉ. सी. बालसुब्रह्मण्यन्‌जी का तथा डॉ. छगनलालजी शास्त्री का मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ, जिनके मार्गदर्शन में हमारी यह यात्रा अनेक उत्तम उपलब्धियों के साथ सम्पन्न हुई। डॉ. शास्त्रीजी के भारतव्यापी सम्पर्क का ही यह सत्परिणाम था कि जहाँ भी हम गये, हमें सर्वत्र परिचित जैसा क्षेत्र प्राप्त हुआ।

और भी ऐसे संस्थान हैं, ज्ञान की आराधना में संलग्न सुयोग्य पुरुष हैं, जहाँ से, जिनसे हम बहुत कुछ प्राप्त कर सकते हैं। अतः मैं यह चाहता हूँ, पुनः ऐसी यात्रा का कभी प्रसंग बने। अहमदाबाद में डॉ. अमरचन्दजी यात्रिक शिष्टमण्डल में सम्मिलित रहे, हम बहुत लाभान्वित हुए। उनके प्रति भी मैं आभार प्रकट करता हूँ।

सुशिक्षित और सुसंस्कारयुक्त की पहचान इन आठ बातों से की जाती है :—

१—अधिक हंसी-मजाक न करना
२—अपने मन व इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखना
३—दूसरों के मर्म पर चोट न करना
४—चरित्र का हनन न करना
५—अपनी क्रियाओं/प्रवृत्तियों को दूषित न करना
६—जीभ से चटोरापन न दिखाना
७—क्रोध का प्रसंग आने पर भी क्षमाशील रहना
८—सत्य में दृढ़ रुचि रखना

—**भगवान महावीर** (उत्तरा० ११/४-५)

अहंकार, क्रोध, प्रमाद (नशा व विषयासक्ति) रोग और आलस्य - शिक्षा प्राप्ति में ये पांच बाधक कारण हैं।

—**भगवान महावीर**

प्रज्ञायुक्त जीवन ही श्रेष्ठ जीवन है।

—**भगवान बुद्ध** (सुत्तनिपात १/१०/२)

श्रद्धा और सत्य की युगल जोड़ी से स्वर्ग लोक को जीता जा सकता है।

—**ऐतरेय ब्राह्मण ३२/१०**

श्रीचन्द सुराना के निदेशन में—
श्रुति प्रिन्टर्स, आगरा - २ में मुद्रित

Published by—
S. KRISHNACHAND CHORDIA
General Secretary
RESEARCH FOUNDATION FOR JAINOLOGY (Regd.)
'SUGAN HOUSE'
18, Ramanuja Iyer Street, Sowcarpet,
MADRAS-600 079